भारतीय रियासतों की कहानी

लेखक : विजय सिंह पथिक
अनुवादक : नरेन्द्र नागर

भारतीय रियासतों की कहानी

विजय सिंह पथिक द्वारा वर्ष-1928 में लिखित पुस्तक

'what are indian states ?' का हिन्दी अनुवाद

लेखक

विजय सिंह पथिक

राजस्थान सेवा संघ के संस्थापक और अध्यक्ष,

राजस्थान केसरी और तरुण राजस्थान।

वर्नाकुलर वीकलीज़ के संस्थापक और

अखिल भारतीय राज्यों के पीपुल्स कॉन्फ्रेंस के उपाध्यक्ष

हिंदी अनुवाद

नरेन्द्र नागर

बी-14 अशोक नगर मार्किट, ग़ाज़ियाबाद-201001

दूरभाष-9891966484

माण्डवी प्रकाशन

ग़ाज़ियाबाद (उ.प्र.) – 201001

भारतीय रियासतों की कहानी

❐ ISBN-81-8212-039-1 ❐

प्रकाशक	माण्डवी प्रकाशन 88, रोगनग्रान, दिल्ली गेट, ग़ाज़ियाबाद-201001
दूरभाष	9810077830
ईमेल	mandvi.prakashan@gmail.com
प्रथम संस्करण	फरवरी-2025
मूल्य	150 /-
सर्वाधिकार ©	अनुवादक : नरेन्द्र नागर
मुद्रक	सुभाषिनी प्रेस, मुकुंद नगर, ग़ाज़ियाबाद

What are Indian States ?

WITH

Illustrative documents.

AN

Introduction to the study of the problem of Indian States and the real conditions of their People.

BY

B. S. Pathik,

Founder and President of The Rajasthan Seva Sangh;
Founder of Rajasthan Kesari and Tarun Rajasthan (Vernacular Weeklies); and Vice-Chairman of All India States' People's Conference.

First Edition. 1100 Copies. | **1928.** | *Supplied by :* **ALAVI BOOK DEPOT Bombay 3.**

(शिकागो विश्वविद्यालय अमेरिका से प्राप्त मूल पुस्तक का आवरण पृष्ठ)

Publisher—
Shanker Lal Verma,
RAJASTHAN PUBLISHING HOUSE,
AJMER.

DS
445
P28

All rights reserved
by the Author.

PRINTED AT
The Diamond Jubilee Press, Ajmer
for
Shanker Lal Verma,
Printer—Naween Rajasthan Press,
AJMER.

प्रस्तावना

यहाँ इस बात के बारे में लिखना अनावश्यक है कि यह पुस्तक किस उद्देश्य से लिखी गई है। लेकिन जिन परिस्थितियों और विशेष परिस्थितियों में इसे लिखा गया है, उनका विशेष रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए, खास तौर पर इसलिए क्योंकि अन्यथा यह संभव है कि पाठक मेरी सतर्कता के बावजूद पुस्तक में रह गई कमियों और ग़लतियों के लिए मुझे माफ़ न करें।

एक महीने पहले तक ऐसी पुस्तक लिखने का विचार मेरे मन में भी नहीं था। बेशक तब भी मैं भारतीय राज्यों के प्रश्न के प्रति अपने कर्तव्यों से अनभिज्ञ नहीं था, जो भारत के राजनीतिक क्षितिज पर मंडरा रहा था। इसके विपरीत, मैं गंभीरता से सोच रहा था कि मुझे क्या रास्ता अपनाना चाहिए। इसी समय मुझे अपनी एक अंग्रेज बहन और मित्र मिस हडसन का पत्र मिला, जो अक्सर मेरे लिए प्रेरणा का स्रोत रही हैं। उन्होंने मुझे इस तरह की पुस्तक लिखने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया, जैसा कि वर्तमान पुस्तक है, जो ब्रिटिश जनता को तुरंत बता सके कि भारतीय राज्य क्या थे? उन्होंने यह भी लिखा, 'हम भारत के बारे में कुछ भी नहीं जानते और हममें से अधिकांश लोग इस बात से अनभिज्ञ हैं कि भारत में राज्यों जैसे विभाजन भी मौजूद हैं।' संक्षेप में उनके तर्क इतने विश्वसनीय लगे कि मैंने तुरंत इस दिशा में एक विनम्र प्रयास करने का संकल्प लिया।यह भी वांछनीय लगा कि इसे जल्द से जल्द प्रकाशित किया जाना चाहिए, यदि यह इंग्लैंड के लोगों के साथ-साथ भारत के लोगों के लिए भी उपयोगी हो लेकिन उसी दिन से मुझे बुखार हो गया जो आज भी जारी है। इसके बाद अन्य परेशान करने वाले कारक सामने आए जो अप्रत्याशित रूप से सामने आए। यह ऐसी स्थिति है कि दो सप्ताह तक सुबह के कुछ घंटे समर्पित करके यह पुस्तक पूरी की गई है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यद्यपि मैंने भारतीय राज्यों की स्थितियों के बारे में जो कुछ लिखा है और दिया है, वह मेरे व्यक्तिगत अवलोकन और अनुभव पर आधारित है, फिर भी यह संभव है कि ऊपर दी गई स्थितियों

और इस पुस्तक को लिखने और प्रकाशित करने की जल्दबाजी के कारण कुछ अशुद्धियाँ और कमियाँ रह गई हों। मुझे आशा है कि ये कारण पाठकों को मुझे क्षमा करने और सहानुभूतिपूर्वक इसे पढ़ने के लिए सक्षम बनाने के लिए पर्याप्त होंगे। अशुद्धियों और ग़लतियों के बारे में कोई भी सुझाव लेखक द्वारा कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किया जाएगा।

साथ ही, मुझे पाठकों को यह भी बताना चाहिए कि न तो यह उपचार संपूर्ण है और न ही इसे ऐसा बनाने का इरादा था। मेरा उद्देश्य केवल भारतीय राज्यों और उनके लोगों की स्थितियों को, पूरी तरह से निष्पक्ष और निष्पक्ष रूप से, जनता के सामने प्रस्तुत करना है और साथ ही लोगों की राय को भी व्यक्त करना है कि राजकुमार और सरकार इस संबंध में क्या कर रहे हैं। ऐतिहासिक विकास का रेखाचित्र केवल तथ्यों को व्यवस्थित श्रृंखला और सच्चे परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने तथा साम्राज्यवादी कट्टरपंथियों जैसे सर हरकोर्ट बटलर के शरारती आक्षेपों के प्रभावों का प्रतिकार करने और उन्हें दूर करने के उद्देश्य से बनाया गया है, जिन्होंने अभी कुछ दिन पहले ही निडरता से कहा था कि भारत हमेशा से निरंकुश शासन के अधीन रहा है और लोकतंत्र एक पश्चिमी पौधा है जिसे केवल विदेशियों की मदद से भारत की धरती पर प्रतिस्थापित किया जा सकता है।

मैं भारतीय राज्यों के लोगों की दयनीय स्थितियों का पूरा वर्णन नहीं कर पाया हूँ लेकिन यह मेरी ग़लती नहीं थी। वास्तव में, इस तरह की छोटी-सी पुस्तक के दायरे में सभी चीज़ों को समाहित करना असंभव था। संक्षेप में मैं यह प्रभावित करना चाहता हूँ कि पाठक इस कार्य को भारतीय राज्यों की समस्याओं के अध्ययन के लिए केवल एक परिचय के रूप में ही लें।

अंत में मैं अपने मित्र श्री गोकुल लाल असावा को इस पुस्तक को प्रकाशित करने में उनकी सहायता के लिए अपने हृदय की गहराई से कृतज्ञता और धन्यवाद व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझता हूँ। वास्तव में, यह उनकी कड़ी मेहनत और परिश्रम का ही परिणाम है कि मैं इसे इतनी जल्दी पूरा कर पाया हूँ।

-विजय सिंह पथिक

दिनांक **21** जुलाई **1928** अजमेर

परिचय

इस पुस्तक का उद्देश्य न तो भारतीय राजाओं की प्रशंसा में स्तुति-गीत गाना है, न ही उनके राजवंशों की महिमा या अपमान के सापेक्ष गुणों की जांच करना है। मेरा उद्देश्य केवल भारत और इंग्लैंड के राजनीतिक जगत का ध्यान इस तरह के प्रश्नों पर केंद्रित करना है। भारतीय राज्य क्या हैं? वे कैसे अस्तित्व में आए? उन्होंने इस देश के भाग्य को कैसे और किस हद तक प्रभावित किया है? उन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी और ग्रेट ब्रिटेन के साथ कैसे संबंध बनाए? वे किन उतार-चढ़ावों से गुज़रे हैं? उनकी वर्तमान परिस्थितियाँ क्या हैं? उनकी वर्तमान माँगें क्या हैं? और उनका मूल्य क्या है? क्या वे समग्र रूप से भारत के लोगों के हितों के अनुकूल हैं या नहीं?
इसके अलावा, ऐसा प्रयास वर्तमान समय में और भी अधिक आवश्यक हो जाता है, जब भारतीय राज्यों का प्रश्न भारत के साथ-साथ इंग्लैंड में भी लगभग सभी विचारशील व्यक्तियों के मन को आंदोलित कर रहा है। भारतीय राजाओं ने कुछ माँगें रखी हैं। वे चाहते हैं कि उनकी स्थिति, अधिकार और विशेषाधिकार उनके प्रजा के पीछे ही निर्धारित किए जाएं, दूसरी ओर, ब्रिटिश भारत के लोग, इंग्लैंड की तो बात ही क्या, राज्यों और उनकी स्थितियों के बारे में घोर अज्ञानता प्रकट करते हैं। इंग्लैंड में कुछ लोग तो यह भी नहीं जानते कि भारत में कुछ ऐसे हिस्से हैं जिन्हें देशी राज्य कहा जाता है। यह कहानी का यह चरण समाप्त नहीं होता। पूरी बात की सबसे बड़ी मूर्खता यह है कि मैसूर आदि जैसे दक्षिण भारत के प्रगतिशील राज्यों के लोग भी, यह विश्वास करना कठिन पाते हैं कि राजपूताना, मध्य भारत और पंजाब के राज्यों में जो घृणित मानवीय बर्बरताएँ की जाती हैं, वे वास्तव में बहुप्रशंसित 'संसदों की माँ' के संरक्षण में होती हैं।

लेकिन चाहे हम उनके बारे में अज्ञानी और उदासीन बने रहना चाहें, राज्य अस्तित्व में हैं और एक राजनीतिक इकाई के रूप में मौजूद हैं, जो इस देश के राजनीतिक जीवन और नियति पर गहरा प्रभाव डालते हैं या डालने की अधिक क्षमता रखते हैं। उनमें से प्रत्येक, यदि निहित स्वार्थों द्वारा

गुमराह होने दिया जाए, तो भारत में एक अलग उल्स्टर में बदल सकता है और इस प्रकार भारत की स्वतंत्रता के पहिये में एक रुकावट बन सकता है। दूसरी ओर, उनमें से प्रत्येक, यदि केवल अपने लोगों को आत्म-चेतना के लिए जगाया जाए, तो खुद को एक और आयरलैंड में बदल सकता है। यह बहुत ही निंदनीय है कि इस देश के साथ-साथ इंग्लैंड के राजनेता भी ऐसी शक्तिशाली इकाई की उपेक्षा करते रहें और अपनी अज्ञानता को तब भी प्रकट करें जब मामले वर्तमान स्थिति में आ गए हैं। यह लगभग दिलचस्प है कि ब्रिटिश जनता से इस तरह की महत्वपूर्ण समस्या पर अपना फैसला देने के लिए कहा जाता है, जिसके बारे में वे कुछ भी नहीं जानते हैं और जिसमें वे अपनी थोड़ी सी गलती से न केवल इस देश के हितों को बल्कि उन सभी देशों के हितों को भी सबसे ज़्यादा नुकसान पहुंचा सकते हैं, जो इसके संसाधनों और क्षमताओं की मदद से स्वतंत्रता का आनंद ले रहे हैं या अधीनता में हैं।

-विजय सिंह पथिक

अंग्रेजी साम्राज्य और देशी राजाओं की लूट का सूक्ष्म वर्णन उकेरती 'पथिक' जी की नायाब कृति

विजय सिंह पथिक बहुमुखी प्रतिभा के धनी और बहुआयामी व्यक्तित्व के स्वामी एक महान देशभक्त थे। उन्होंने हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, राजस्थानी और पंजाबी में 32 पुस्तकें लिखीं। उन्होंने छहः अखबारों का सम्पादन किया। देशभक्ति, वीरता और आत्म बलिदान की भावना उन्हें पैतृक विरासत में प्राप्त हुई थी। इनके दादा इंदर सिंह राठी ज़िला-बुलंदशहर की एक रियासत मालागढ़ के रवाब वलीदाद खाँ के दीवान और प्रमुख सेनापति थे। 1857 की क्रान्ति में अंग्रेज सेना से लड़ते हुए उन्हें शहादत प्राप्त हुई थी। इनके पिता हम्मीर सिंह राठी और माता कंवल कुंअरी भी आजीवन अंग्रेजी साम्राज्य के खिलाफ़ लड़ते रहे। शुरूआती दिनों में 'पथिक' जी का झुकाव सशस्त्र क्रान्ति द्वारा देश को आज़ाद कराने की योजना की ओर था और उन्होंने रासबिहारी बोस के नेतृत्व में 1915 की क्रान्ति योजना में सक्रिय रूप से हिस्सा लिया था। बाद में 'पथिक' जी का झुकाव गांधीवादी विचारधारा की ओर हुआ और वे सत्याग्रह के मार्ग पर चल पड़े। बिजौलिया का विश्वप्रसिद्ध किसान सत्याग्रह 'पथिक' जी के ही कुशन नेतृत्व में हुआ था।

प्रस्तुत पुस्तक मूल रूप से 'पथिक' जी ने (What are Indian States) नाम से अंग्रजी में लिखी थी। भाई नरेन्द्र नागर के प्रशंसनीय

प्रयास और अतुलनीय परिश्रम के फलस्वरूप इसका हिन्दी अनुवाद 'भारतीय रियासतों की कहानी' के नाम से आप तक पहुँच रहा है।

असल में यह पुस्तक ब्रिटिश भारत के देशी राज्यों अर्थात रियासतों की कहानी है। इसमें 'पथिक' जी ने हड़प्पाकालीन और वैदिक भारतीय लोकतांत्रिक गणराज्यों से प्रारम्भ करके तत्कालीन रियासतों अथवा राज्यों तक की कहानी बड़े सलीक़े से लिखी है। इस पुस्तक का प्रकाशन 1928 में 'पथिक' जी की एक अंग्रेज महिला मित्र मिस हडसन की प्रेरणा और सहयोग से हुआ था। पुस्तक की प्रस्तावना में स्वयं 'पथिक' जी ने इस बात का ज़िक्र किया है।

असल में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व कर रही भारतीय कांग्रेस की शुरू में नीति थी कि कांग्रेस के अंग्रेज सरकार के खिलाफ़ आंदोलन चलायेगी। देशी रियासतें कांग्रेस के एजेंडे में नहीं थीं। ये विजय सिंह पथिक जी ही थे जो लगातार इस बात पर ज़ोर दे रहे थे कि देशी राजाओं से मुक्ति के बिना भारतीय जनता को मिली आज़ादी अधूरी होगी। पथिक जी के कई वर्ष के प्रयास के बाद कांग्रेस ने देशी रियासतों से मुक्ति को अपने एजेंडा में शामिल किया। इंग्लैंड में बैठे अंग्रेजी शासक और अधिकारी भारतीय रियासतों के बारें में ठीक से नहीं जानते थे। मिस हडसन ने 'पथिक' जी को यह बात बताई और इस विषय पर एक पुस्तक लिखने का अनुरोध किया। मिस हडसन के अनुरोध पर ही पथिक जी ने यह पुस्तक लिखी। 'पथिक' जी ने बहुत जल्दी में केवल दो सप्ताह की अवधि में यह पुस्तक लिखी। उस दौरान वे बुखार से भी पीड़ित थे। इसके बावजूद पुस्तक की वस्तु , भाषा और शैली देखकर आप 'पथिक' जी की प्रतिभा सम्पन्नता का पता चलता है। प्रस्तुत हिन्दी संस्करण के सफल प्रकाशन के लिए मैं एक बार पुनः भाई नरेन्द्र नागर को धन्यवाद प्रेषित करता हूँ जो भारतीय इतिहास की यह अमूल्य धरोहर पाठकवृंद तक उन्होंने पहुंचाने का सुखद कार्य किया। साथ ही देश के सुप्रसिद्ध 'माण्डवी प्रकाशन' को भी साधुवाद जिन्होंने अल्पसमय में यह प्रकाशन किया।

–राजकुमार भाटी

आत्माभिव्यक्ति

विजय सिंह पथिक एक महान देशभक्त, स्वतन्त्रता सेनानी, पत्रकार, कवि, लेखक, चिन्तक एवं बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। मैंने पथिक जी के बारे में वर्ष 2010 में सुना व पढ़ा। पढ़ने के बाद आश्चर्य हुआ कि एक व्यक्ति इतना प्रतिभा सम्पन्न कैसे हो सकता है जो कि सशस्त्र क्रान्तिकारी, आन्दोलनकारी, सत्याग्रही व गांधीवादी भी रहा हो। प्रत्येक जाति व समाज ने अपने महापुरुषों के बारे में लिखते हुऐ उनको बहुत महिमा मंडित किया है। यह स्वाभाविक भी है किन्तु जब उन पर अन्य लेखको डॉ. पद्म सिंह वर्मा, श्री शंकर सहाय सक्सेना तथा डॉ. विष्णु पंकज जैन आदि द्वारा लिखी पुस्तके लिखित पढ़ीं तो यक़ीन हुआ कि उनके बारे में जो लिखा गया है वह बहुत सूक्ष्म है। उनका कार्य व आज़ादी में योगदान विराट है।

'पथिक' जी ने स्कूली शिक्षा प्राईमरी स्कूल तक ही प्राप्त की थी। उन्हें किसी कॉलेज या विश्वविद्यालय में पढ़ने का अवसर नहीं मिला लेकिन उन्होंने छहः अख़बारों का सम्पादन किया लेख, कविता,नाटक, महाकाव्य, कहानी आदि हर विद्या पर लिखा है। उन्होंने वर्ष 1928 मे अंग्रेजी में पुस्तक लिखी 'What are Indian States' जो कि राजस्थान पब्लिशिंग हाऊस अजमेर से प्रकाशित हुई थी। उसको पढ़ने की जिज्ञासा हुई कि व्यक्ति स्वाध्याय के द्वारा अंग्रेजी भाषा में पुस्तक कैसे लिख सकता है ?

इस पुस्तक को खोजना शुरू किया। स्थानीय पुस्तकालयों से लेकर देश के बड़े विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों में तथा राजस्थान पब्लिशिंग हाऊस अजमेर व राजस्थान संग्राहलय बीकानेर मे भी पत्राचार व दूरभाष से सम्पर्क किया। जानकारी मिली कि इस पुस्तक की प्रति उप्लब्ध नहीं है। इन्टरनेट पर

खोजते हुए यह ज्ञात हुआ कि पुस्तक विश्व के आठ विश्वविद्यालयों के पुस्तकालय जैसे मिषिगन विश्विद्यालय अमेरिका, शिकागो विश्वविद्यालय अमेरिका, लंदन स्कूल आफ इकनामिक्स लंदन, ट्रिनिटी कालेज डबलिन, नेशनल लाईबरेरी स्काटलैण्ड, आक्सफ़ोर्ड विश्व विद्यालय में उप्लब्ध है। ईमेल के माध्यम से इन विश्व विद्यालयों में सम्पर्क किया गया। शिकागो विश्वविद्यालय की पुस्तकालयाध्यक्ष मिस लोरा रिंग से वर्ष 2022 में सम्पर्क किया किन्तु उन्होंने बताया कि अमेरिका के पेटेन्ट कानून के तहत इस पुस्तक को प्रकाशन के 96 वर्ष के बाद यानि 2024 में ही पब्लिक डोमेन में डाला जा सकता है। उन्होंने सुझाव दिया कि पुस्कालयों के बीच अन्तराष्ट्रीय सन्धि के तहत भारत में कोई पुस्तकालय को आपके अनुरोध पर हम यह पुस्तक दे सकते हैं किन्तु यह प्रयास सफ़ल नही हुआ। वर्ष 2024 में शिकागो विश्वविद्यालय की पुस्तकालयाध्यक्ष मिस लोरा रिंग को पुनः इमेल कर पुस्तक देने का अनुरोध किया और अंततः 28 मई 2024 को यह 'ऐतिहासिक दस्तावेज़' प्राप्त हुआ। संयोगवश 28 मई 'पथिक' जी की पुण्यतिथि भी है। पुस्तक के मिलने पर मैं बहुत रोमांचित व अभिभूत हुआ ।

डॉ. राम पाण्डे के द्वारा लिखित पुस्तक 'पिपुल्स मूवमेंट इन राजस्थान' में 'पथिक' जी के संकलित पत्रों से यह ज्ञात हुआ कि 'पथिक' जी उस समय इंग्लैन्ड की संसद के सदस्यों व अन्य जिनमें प्रमुख रूप से डॉ. Ernest Bairstow, Rushbrook Wilhams, Mr. W.T. Kelly, Mr. Purcell, Mr. Fenner Brockway, Mr. Wilfred Wellock, Miss A Hudson आदि से पत्राचार करते थे तथा हिन्दुस्तान में अंग्रेजों के दमन व राजस्थान की राजशाही द्वारा लोगों के उपर किया जा रहे अत्याचार, दमन से अवगत कराया करते थे।

मिस ए हडसन ने 'पथिक' जी को बताया कि इंग्लैंड में हम लोग यह नहीं जानते कि हिन्दुस्तान के अन्दर भी स्टेटस हैं जिनमें राजशाही का शासन भी है? उन्होंने पथिक जी को पुस्तक लिखने की प्रेरणा दी, जिसके द्वारा न सिर्फ इंग्लैण्ड के लोग बल्कि अन्य देश भी जान सकें कि भारत मे अंग्रेजो व उनके अधीन प्रिन्सली स्टेस जनता के साथ कैसा दमन व अत्याचार करते हैं।

पुस्तक की प्रस्तावना में पथिक जी ने लिखा है कि यह पुस्तक उन्होंने मात्र 15 दिन में बीमारी व अन्य परेशानियों को झेलते हुऐ लिखी। यह उनकी

अद्वितीय योग्यता और प्रतिभा को दर्शाता है। उनकी अंग्रेजी भाषा व विषय पर पकड़ बेजोड़ है। यह ऐतिहासिक दस्तावेज़ भारत के लोगों के हालात और राजशाही के भोग-विलास अय्याशियों और जनता के साथ सम्बन्धों को उजागर करता है। कैसे ग़रीब किसान मज़दूर कामगारों का शोषण व अत्याचार किया गया और विलासिता भरे महलों और किलों का निर्माण किया गया। पुस्तक पढ़ने के बाद जब आप राजस्थान के महलों और किलों को देखने जायेंगे तो आपको बेशक़ीमती महलों में ग़रीबों और मज़दूरों का खून पसीना, दुःख-दर्द, व सिसकियाँ सुनाई देंगी।

'पथिक' जी ने जीवन भर अपने सिद्धान्तों से कोई नहीं किया। वर्ष 1947 में देश आज़ाद होने के बाद उनका शिष्य माणिकलाल वर्मा राजस्थान के प्रथम मुख्यमन्त्री बने किन्तु 'पथिक' जी ने सत्ता मे हिस्सेदारी की दौड़ से दूर रहे । मथुरा के जनरल गंज में एक छोटे से मकान में अपना आख़िरी जीवन ग़रीबी गुमनामी में व्यतीत किया तथा 28 मई 1954 को अजमेर के पालबीचला स्थित किराये के घर मे अन्तिम सांसें लीं। उनके कार्यों एवं व्यक्तित्व के अनुरूप इतिहास में उन्हें स्थान नहीं मिल सका है। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में ऐसे बहुत क्रान्तिकारी हैं जिनका योगदान बहुत सीमित है किन्तु इतिहास में वह बहुत उच्च पायदान पर हैं किन्तु 'पथिक' जी को इतिहास में वह स्थान नहीं मिल पाया है जिसके वह हक़दार हैं। इतिहास मे उचित स्थान दिलाने का दायित्व समाज के कन्धों पर हमेशा रहेगा। नवयुवकों को 'पथिक' जी के कार्यों पर शोध कर उन्हे इतिहास में उचित स्थान दिलाने की शपथ लेनी चाहिये।

मेरा अंग्रेजी भाषा का ज्ञान बहुत सीमित है। पुस्तक का अनुवाद करने में गूगल ट्रांसलेट तकनीक का सहयोग लिया है। आशा करता हूँ कि पाठक पुस्तक में हुई त्रुटियों के लिए मुझे क्षमा करेंगे।

-नरेन्द्र नागर
बी-**14** अशोक नगर मार्किट,
ग़ाज़ियाबाद-**201001**

अनुक्रम

क्र.	विषय	पृष्ठ
1.	प्राचीन भारत और एशिया	17-20
2.	भारतीय राज्यों की उत्पत्ति	21-23
3.	अंग्रेजों का आगमन	24-25
4.	राज्यों का आंतरिक संगठन	26-28
5.	संधियाँ	29-32
6.	अधीनस्थ अलगाव	33-36
7.	स्वतंत्रता का पहला युद्ध	37-40
8.	नीति में बदलाव	41-48
9.	पुनः जागरण	49-53
10.	वर्तमान स्थिति	54-61
11.	आंतरिक प्रशासन	62-65
12.	विभाग	66-70
13.	कुछ तथ्य और उदाहरण	71-75
14.	सामाजिक जीवन	76-83
15.	किसान	84-87
16.	कृषि मज़दूर और शिल्पकार	88-96
17.	लोगों की प्रकृति	97-101
18.	भारतीय राज्यों में जागृति	102-105
19.	नए युद्धाभ्यास	106-114
20.	लोकप्रिय आवाज़	115-117
21.	बटलर समिति और राज्य के लोग	118-126
22.	संवैधानिक और राजनीतिक पहलू	127-133
23.	समिति और योजना	134-144

❐

अध्याय–1
प्राचीन भारत और एशिया

प्राचीन भारत और एशिया के बारे में निहित स्वार्थों द्वारा कई विचार रखे गए हैं और उन्हें प्रचलन में लाया गया है। एक बात विशेष रूप से हमारे 'सौम्य' शासकों द्वारा समय-समय पर प्रचारित की गई है और वह यह है कि एशिया और विशेष रूप से भारत हमेशा निरंकुश शासन के अधीन रहा है और इसलिए वे इसके आदी हो गए हैं। लोकतंत्र का विचार पश्चिमी दिमाग की एक विशेष उपज है। इसके अलावा, मध्ययुगीन युग में इस भूमि पर प्रभुत्व रखने वाले साम्राज्यवादी समूहों द्वारा इस महाद्वीप के प्राचीन साहित्य को नष्ट करना और मानव इतिहास की शुरुआत से ही अपने वंश का पता लगाने के उनके दावों ने इन साम्राज्यवादी प्रचारकों को जनता के दिमाग़ पर ऐसे घातक सिद्धांतों को प्रभावित करने के उनके नापाक प्रयासों में एक आसान अवसर प्रदान किया है। सौभाग्य से हमारे लिए, विभिन्न धर्मों और कुलों के साहित्य विशेष रूप से बौद्ध साहित्य और जैन पवित्र पुस्तकों ने उन तथ्यों को संरक्षित किया है जो हमारे दिमाग के सामने उन दिनों की गणतंत्र संस्थाओं की शानदार तस्वीर को उकेरने के लिए पर्याप्त हैं। इस साहित्य का एक बड़ा हिस्सा पुराने शहरों के मलबे के नीचे भी पड़ा है और हाल ही में हुई खुदाई और अन्वेषणों से धीरे-धीरे इसे प्रकाश में लाया जा रहा है। लेकिन हमारा उद्देश्य इस पुस्तक को यथासंभव उपयोगी बनाना है, क्योंकि यह सभी आवश्यक बातों का पूरा वर्णन करने के लिए अनुकूल है, इसलिए पुरातनता पर हाल के शोधों ने हमारे लिए जो कई तथ्य उपलब्ध कराए हैं, उन्हें इसमें शामिल करना असंभव है।

लेकिन यह एक निर्विवाद तथ्य है कि साम्राज्यवाद भारत और एशिया के इतिहास में बाद की उपज थी। एक समय था जब पूरा एशिया आदिम गणराज्यों से आच्छादित था। प्रत्येक गाँव या गाँवों का समूह अपने आप में एक स्वतंत्र गणराज्य था। इनमें से कुछ विशेष कुलों द्वारा बनाए गए थे जबकि अन्य उस क्षेत्र के अंदर रहने वाले सभी वर्गों से मिलकर बने थे। महाभारत के रचयिता ने इस स्थिति का सुन्दर चित्रण एक दोहे में किया है-

न वै राज्यं न राजं च न च दण्डो न च दाण्डिकः ।
धर्मेणैवहि प्रजा सर्वा रक्षान्ति स्व परस्परम् ।।

अर्थात् न तो कोई शासक था, न कोई सरकार, न कोई दण्ड संहिता थी, न ही उसका प्रशासक। सभी लोग अपने सामाजिक कर्तव्यों को समझते हुए एक दूसरे की रक्षा करते थे।

महाभारत में ऐसे लोकतंत्रों को 'गणतंत्र' और 'संघ' कहा गया है और शांति पर्व में भीष्म ने इनमें से प्रत्येक को कई राज्यों से अधिक शक्तिशाली बताया है। इनमें से कई गणराज्यों में कोई सरकार नहीं थी, कोई भी किसी के प्रति निष्ठा नहीं रखता था या किसी को राजस्व नहीं देता था और इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति गणराज्य की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझता था।

इसमें कोई संदेह नहीं कि बाद में लोगों में अध्यात्म के प्रति अंध विश्वास पैदा हो गया और उसके बाद राजतंत्र का प्रचलन हुआ लेकिन तब भी यह हानिकारक गुणों से रहित था। साम्राज्यवाद की ऐसी धारणाएँ। उस समय के राजा अपनी प्रजा की रक्षा और सेवा करना अपना मुख्य कर्तव्य समझते थे और प्रजा भी अपने कर्तव्यों को पूरी तरह समझती थी। इसके अलावा, इस समय तक धर्म राजनीति के अधीन नहीं हो गया था, उस समय के गुरु, राजा और प्रजा के बीच भी तराजू रखते थे। और कुछ समय के लिए उन्होंने अपने पवित्र कर्तव्यों का ईमानदारी से निर्वहन किया और इसीलिए उस काल में लोगों के लिए बेन** जैसे निरंकुश शासकों के ख़िलाफ़ सफ़लतापूर्वक विद्रोह करना संभव हो सका।

संक्षेप में, एशिया और विशेष रूप से भारत ने पहले ही राजनीतिक और सामाजिक संस्थाओं में पूर्णता की वह ऊँचाई प्राप्त कर ली थी जिसके लिए आज दुनिया अंधेरे में टटोल रही है। इस युग के लोग इतने विवेकशील, बुद्धिमान और शांतिप्रिय थे कि उन्हें अपने मामलों का प्रबंधन करने के लिए किसी सरकार की आवश्यकता नहीं थी। वे स्वयं शासन करते थे। कोई भी सरकार न होने पर भी एक-दूसरे के वैध अधिकारों और विशेषाधिकारों में हस्तक्षेप नहीं करता था। किसी को भी दूसरों को गुलाम बनाना पसंद नहीं था। सभी आपसी सहयोग से काम करते थे। भारत जैसे विशाल देश में भी,

केवल कुछ ही शहर थे। वस्तु विनिमय सिक्कों के माध्यम से नहीं, वस्तुओं के माध्यम से किया जाता था और वह भी केवल ज़रूरतों को पूरा करने के लिए, न कि किसी सौदे के लिए। गाँव को बिना दावे वाली या उत्तराधिकार वाली संपत्ति का मालिक माना जाता था। अनाथों और अपाहिजों की देखभाल गाँव के समुदाय द्वारा की जाती थी।

लोग किसी के आदेश का पालन नहीं करते थे, बल्कि अपने गाँव के मुखिया और बुजुर्गों के माध्यम से करते थे। कोई भी क़िले नहीं बनाता था। जिस युद्ध में छल, कपट और धोखाधड़ी का सहारा लिया जाता था, उसे सभी लोग पाप मानते थे। युद्ध के चारों ओर इतनी सीमाएँ बाँध दी गईं कि यह लगभग असंभव हो गया। उदाहरण के लिए, युद्ध का सहारा केवल न्याय, स्वतंत्रता, धर्म और सत्य को बनाए रखने के लिए लिया जाना था। इसका सहारा केवल उन लोगों को लेना था, जो समान रूप से शक्तिशाली हों, युद्ध कला में समान रूप से पारंगत हों और हथियारों से समान रूप से सुसज्जित हों। कोई भी आश्चर्यजनक हमला नहीं होना था। खुला और पारदर्शी होना चाहिए था। कमर के नीचे वार करना पाप माना जाता था। अगर विरोधी को प्यास लगे तो उसे पहले पानी पिलाया जाना चाहिए, अगर वह थका हुआ हो तो उसे आराम दिया जाना चाहिए, आदि-आदि***, यही कारण है कि हमें लूटपाट, आगजनी, अमानवीय बलिदान, क़िले बनाने आदि जैसी नीच चालों का कोई उल्लेख नहीं मिलता है, जैसा कि हमारे वर्तमान राजपूतों और अन्य शासकों द्वारा किया जाता था। बेशक़, इस तरह के घृणित प्रयोग और रणनीतियाँ, जैसा कि उनके इतिहास में दर्शाया गया है, मध्य एशिया के शक़, सीथियन और तातार लोगों के बीच प्रचलित पाई गईं, और जिन्हें उन दिनों हिंदुओं द्वारा इन्हीं कारणों से 'असुर'* कहा जाता था। निस्संदेह बाद में, आध्यात्मिक सिद्धांतों पर आधारित यह राजतंत्र भी, उपर्युक्त मध्य एशियाई कुलों या जनजातियों के संक्रामक संपर्क के कारण पतित होने लगा। यही वह समय था जब बुद्ध परिदृश्य में आए और एक बार फिर पूरे भारत और एशिया में गणतंत्र की भावना पुनर्जीवित हुई। एक शक्तिशाली गुट के विरोध के बावजूद उन्होंने एक बार फिर दिव्य आनंद और खुशी का वह आश्रय बनाया जिसका वर्णन ऊपर किया गया है। यही

कारण है कि फेबियन नामक चीनी यात्री ने लिखा, कि 'उसे भारत में एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जो झूठ बोलता हो' और यही कारण है कि हम

बिमलचरण लॉ को निम्नलिखित पंक्ति में लिखते हुए पाते हैं,'कोई वंशानुगत संप्रभु शासन नहीं था, राज्य की शक्ति नागरिकों की सभा में निहित थी, जिनमें से प्रत्येक खुद को राजा या राजा कहता था। बौद्ध पुस्तकों में वर्णित सरकार का यह रूप प्राचीन भारत में दुर्लभ नहीं था, यह दिखाने के लिए पर्याप्त सबूत हैं कि प्राचीन भारत में यह रूप बाद के साहित्य से हमारी कल्पना से कहीं अधिक प्रचलित था, फिर भी हमें यह याद रखना चाहिए कि साम्राज्यवाद भारत में बाद की उपज थी। वास्तव में, 'चंद्रगुप्त मौर्य' से पहले हमें ऐसी कोई चीज़ नहीं मिलती है।

*	हिंदुओं का एक पवित्र और ऐतिहासिक ग्रंथ।
*	महाभारत का एक अध्याय।
**	हिंदुओं के ऐतिहासिक ग्रंथों में वर्णित एक महान वृद्ध व्यक्ति।
*	भागवत में एक निरंकुश शासक का उल्लेख है।
***	महाभारत देखे
**	शैतानी प्रवृत्ति और विश्वास रखने वाले लोग।

★

अध्याय–2
भारतीय राज्यों की उत्पत्ती

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, साम्राज्यवाद के बीज इस देश में मध्य एशिया से आयातित हुए थे, मध्य पूर्व से आए शासकों ने अपने प्रभाव और अधिकार की मदद से इन नापाक सिद्धांतों का प्रचार करना शुरू किया। लेकिन बौद्ध धर्म का प्रसार उनके रास्ते में आ गया। अपने प्रयासों में विफ़ल होने के बाद, उन्होंने अंततः उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा की। सौभाग्य से उनके लिए बौद्ध काल भी लंबे समय तक नहीं चला। इसका प्रभाव और अधिकार पूरे एशिया में फैलने के साथ ही अचानक और नाटकीय रूप से कम हो गया। स्वार्थी साम्राज्यवादियों ने, जो इतने लंबे समय से समय का इंतज़ार कर रहे थे, अब अपना सिर उठाया। 'ब्राह्मणवाद' जो पहले से ही बौद्ध धर्म का विरोधी बन चुका था, ने नए लोगों के साथ हाथ मिला लिया। बौद्ध धर्म के अनुयायियों को अब पाखण्डी करार दिया गया और जिन लोगों को पहले 'असुर' कहा जाता था, उनकी जय-जयकार की गई। विरोधियों को बदनाम करने के उद्देश्य से कई झूठे और नए धार्मिक सूत्र गढ़े गए और मूल शास्त्रों में जोड़े गए। यहाँ तक कि बौद्ध (गणतंत्र) केंद्रों में जाने वाले लोगों को भी तपस्या करवानी पड़ती थी। संक्षेप में, अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए, उन्होंने लोगों की धार्मिक भावनाओं का हर संभव तरीके से शोषण किया। स्वाभाविक रूप से इस तरह के निरंतर संघर्ष के परिणाम स्वरूप लोगों में भेदभाव की सारी भावनाएँ समाप्त हो गईं और वे सांप्रदायिक पूर्वाग्रहों से ग्रसित हो गए। अब, अपने दल के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए, चाहे वह अच्छा हो या बुरा, उदाहरण के लिए, एक दोहा बनाया गया और उसे हिंदुओं के पवित्र ग्रंथ 'देवल स्मृति' में जोड़ दिया गया, जो इस प्रकार है*

सिन्धु सौबीर सौराषं तथा प्रत्यन्त यासिनः
कलिङ्ग कोकणान् वंगान् गत्वा संस्कारमर्हति
(स्मृतिनाम समुच्चय में प्रकाशितआनंदाश्रम ग्रंथावली पूना दोहा संख्या 16)

इसका अर्थ है कि सिंध, जैसलमेर, काठियावाड़ और कलिंग कोंकण और बंगाल सहित उनके परे के प्रांतों में जाने वाले लोगों को धार्मिक तपस्या करनी होगी, जो उनका मुख्य कर्तव्य माना जाता था। यह स्थिति सैकड़ों वर्षों तक चली। जिन गुरुओं ने पहले लोगों को लोकतंत्र की पूजा और उससे प्रेम करना सिखाया था, वही अब धार्मिक कट्टरता के कारण अपने ही दल या गुट के निरंकुश राजाओं के प्रति लोगों में अंधश्रद्धा पैदा करने लगे। साम्राज्यवादी विस्तार के लिए उनकी सभी गतिविधियों को धार्मिक रंग देकर लोगों को उनका समर्थन करने के लिए प्रेरित किया। इतना ही नहीं, उन्होंने लोगों को उनके सभी नापाक कामों को सहन करना सिखाया, जैसे गांवों, कस्बों और शहरों और साहित्य को लूटना और जलाना, पूजा स्थलों को अपवित्र करना आदि। और यह ध्यान देने योग्य बात है कि यह कुछ दिनों तक नहीं, बल्कि सदियों तक चलता रहा। कई वर्षों से उजाड़ और लूटपाट के इन दृश्यों को देखने वाले लोग इसे अनदेखा करने लगे।

फिर जैनियों की बारी आई। उन पर भी यही अत्याचार किए गए। जब ब्राह्मणवाद लगभग समाप्त होने को था, तब मुसलमानों का आक्रमण शुरू हो गया। उन्होंने भी ब्राह्मणों की तरह अपने उन भाइयों की भावनाओं का शोषण किया, जो मूलतः लोकतांत्रिक धर्म से जुड़े थे, और अपने साम्राज्यवादी उद्देश्यों को पूरा करने के लिए ऐसा किया। भारत पर आक्रमण करने से बहुत पहले ही उन्होंने अरब और फारस के कई स्वतंत्र मुस्लिम गणराज्यों को नष्ट कर दिया था। अब भारत दो साम्राज्यवादी गुटों के बीच युद्ध का मैदान बन गया। चूँकि ये दोनों ही सच्चे प्राचीन धार्मिक प्रवृत्तियों से रहित थे, इसलिए उन्होंने कोई भी बर्बरता या नीचता नहीं छोड़ी, जिसे वे एक-दूसरे पर थोपते या करते नहीं थे या जिसकी घिनौनीता को छिपाने के लिए उन्हें धार्मिक जामा नहीं पहनाया जाता था। इस प्रकार लोगों को सैकड़ों वर्षों तक उन्हीं चीज़ों की पूजा करना सिखाया गया, जिनसे वे सबसे अधिक घृणा करते थे। पहले तो इन चीज़ों को आपातकालीन कर्तव्यों के रूप में पेश किया गया, फिर उन्हें सामान्य नैतिकता का रंग दिया गया और अंत में उन्हें अपवित्र कर्तव्यों का दर्जा दिया गया। पाठकों को अच्छी तरह से पता है कि जब तीन हज़ार वर्षों तक ऐसी ही स्थिति रही, एक ओर धार्मिक और

सांप्रदायिक युद्ध के कारण लोग शिक्षा और शांति के लाभों से वंचित थे, दूसरी ओर साहित्य और राजनीति का श्रेष्ठतम ज्ञान लगातार नष्ट हो रहा था, और अंत में लोगों को सबसे निकृष्ट सिद्धांत का पालन करना सिखाया जा रहा था, तो कुछ भी असंभव नहीं था। जहाँ सबसे निकृष्ट बर्बरता को धार्मिक स्वीकृति दी जा रही थी, जहाँ डकैती को बहादुरी का नाम दिया जा रहा था और जहाँ कवियों, विद्वानों और धर्मगुरुओं द्वारा अपने स्वार्थ के लिए पाखंड को राजनीति के रूप में पेश किया जा रहा था, तो क्या आश्चर्य है, अगर इसके परिणामस्वरूप इस देश में स्वतंत्र रियासतों का समूह पैदा हो गया और अगर लोग न केवल उन्हें सहन करने लगे, बल्कि उनकी पूजा भी करने लगे।**

* संदर्भ के लिए कृपया देखेंरूजयसवाल द्वारा हिंदू राजनीति क्लहान द्वारा राज तरंगिनी। रॉड द्वारा राजस्थान।

** राजपूतों का इतिहास जी.एस. ओझा, खंड।

अध्याय–3
अंग्रेजों का आगमन

भारतीय राज्यों की वर्तमान स्थिति को ठीक से समझने के लिए, सबसे पहले यह जानना होगा कि अंग्रेजों के आने से पहले उनकी स्थिति क्या थी। और इसे अच्छी तरह से समझने के लिए, उनके आगमन से ठीक पहले की अवधि पर ध्यान देना होगा।

इतिहास का हर छात्र इस तथ्य से भली-भाँति परिचित है कि मुसलमानों में से किसी एक राजवंश ने भारत पर पर्याप्त समय तक शासन नहीं किया। एक राजवंश के बाद दूसरा राजवंश आता था, जो अपने पूर्ववर्तियों को नष्ट करके इस देश का शासक बन जाता था। मुस्लिम हितों, धर्म या जिहाद की दुहाई केवल ग़रीब लोगों को सेना में भर्ती करने के लिए दी जाती थी, लेकिन जब दूसरों की जमीन हड़पने का सवाल आया, तो इन विजेताओं ने इसे हवा में उड़ा दिया। जहाँ तक इस देश के लोगों का सवाल है, वे 3000 साल तक ऐसी परिस्थितियों से गुज़रने के बाद, ऐसे गुंडों के साथ उदासीनता की नज़र से देखने के आदी हो चुके थे। उनके लिए, यह जीवन का एक सामान्य और स्वाभाविक क्रम था।

अकबर महान ने ही अपने साम्राज्य की सुरक्षित नींव रखी थी लेकिन फिर औरंगज़ेब ने इसकी क़ब्र खोदनी शुरू कर दी। उसकी कट्टरता और कुटिल नीति ने आख़िरकार अपना फल दिया। भारत में उसके अत्याचारों ने दो शक्तिशाली शक्तियों को जन्म दिया। एक शिवाजी द्वारा हिंदू साम्राज्य को फिर से स्थापित करने के लिए शुरू किया गया मराठा आंदोलन और दूसरा सिखों का खालसा संगठन जो एक तरह के आध्यात्मिक समाजवाद पर आधारित था। वे दिन-प्रतिदिन मज़बूत होते गए और बहादुर शाह* के समय तक वे इतने शक्तिशाली हो गए कि पूरे भारत में उनके प्रभुत्व को लेकर कोई विवाद नहीं रह गया। मुग़लों की संप्रभुता अब दिल्ली, बंगाल और अवध के कुछ क्षेत्रों पर नाममात्र की रह गई थी। यहाँ यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि भारतीय राजकुमारों को आम तौर पर मुग़ल सम्राटों के हाथों कुछ मामलों को छोड़कर अच्छा व्यवहार नहीं मिलता था। उन्हें उनके

दरबार में लंबे समय तक रहना पड़ता था। स्वतंत्र शासक होने के उनके दावे को मुग़लों ने कभी स्वीकार नहीं किया, जिन्होंने उत्तराधिकार और पदच्युति आदि के सभी अधिकारों का प्रयोग किया, ठीक वैसे ही जैसे ब्रिटिश सरकार करती है। बेशक, वे (राजकुमार) सेना बनाए रख सकते थे, संधियों पर बातचीत कर सकते थे और अपने जागीरें** और सम्मान भी दे सकते थे जैसा कि वे आज कर सकते हैं।

* अंतिम दिल्ली के मुस्लिम सम्राट!
** सामंती भूमि

अध्याय–4
राज्यों का आंतरिक संगठन

यहाँ राज्यों के तत्कालीन आंतरिक संगठन पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है, क्योंकि आज की स्थिति में, जहाँ तक इसकी आवश्यक विशेषताओं का प्रश्न है, इसमें बहुत कम परिवर्तन हुए हैं। इसके अलावा, यह हमें इसके विकास के नवीनतम चरणों को रेखांकित करने में सहायता करेगा। प्रत्येक भारतीय राज्य में शुरू से ही पाँच मुख्य विभाग रहे हैं, अर्थात :-

1. इसका एक बड़ा भाग गुरुओं के अधीन था, जिसे उन्होंने उपहार के रूप में प्राप्त किया था।

2. एक और बड़ा भाग जागीरदारों* के अधीन था, जिसे उन्होंने आपातकाल के समय राज्यों को दी गई अपनी विशेष सेवाओं के बदले में या उन्हें दिए गए विशेष अनुग्रह के परिणामस्वरूप प्राप्त किया था।

3. इसका एक छोटा भाग कवियों, कलाकारों और इतिहासकारों के अधीन था, जो उन्हें विशेष अनुग्रह के रूप में या आमतौर पर प्रचारकों और इतिहासकारों के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए प्राप्त हुआ था।

4. भूमि का वह भाग जिस पर सामंत सरदारों का कब्ज़ा था, जो पहले तो स्वतंत्र थे, लेकिन बाद में संकट के समय में अपनी रक्षा करने में असमर्थ होने के कारण किसी बड़े राजकुमार की अधीनता स्वीकार कर ली।

5. वह भाग जो राजकुमार का था और सीधे उसके द्वारा शासित था।

इन सभी पाँचों प्रभागों में प्रत्येक को भूमि पर कर लगाने और अपने-अपने नियंत्रण में प्रजा पर नए कर लगाने तथा राजस्व को अपनी इच्छानुसार खर्च करने का अधिकार था। बड़े जागीरदारों और महत्वपूर्ण व्यक्तियों के पास राजनीतिक और न्यायिक शक्तियाँ थीं। उनके सम्मान और पद का विनियमन उनके अधिकारों और विशेषाधिकारों के अनुसार होता था।

अब राज्यों के लोगों की बात करें, तो वे आम तौर पर चार समूहों में आते थे। सबसे ऊँचा समूह किसानों का था। दूसरे समूह में कृषि श्रमिक और

कारीगर शामिल थे। तीसरे में व्यापारी शामिल थे और चौथे में मध्यम वर्ग के लोग शामिल थे, जिनमें राज्य के अधिकारी और कर्मचारी बहुमत में थे। अंतिम दो समूह आम तौर पर बड़े नहीं थे। प्रजा के लिए कोई कठोर कानून नहीं थे। बोलने, लिखने, संगठन बनाने और काम करने की स्वतंत्रता पर कोई प्रतिबंध नहीं था। भूमिकर और सीमा शुल्क आदि के लिए कुछ प्रकार के स्थायी नियम थे और उनका पालन स्वाभाविक रूप से किया जाता था। इसमें कोई संदेह नहीं कि जिस प्रकार लोगों के मौलिक अधिकारों पर कोई प्रतिबंध नहीं था, उसी प्रकार राजकुमार और जागीरदारों की असीमित शक्तियों पर भी कोई रोक नहीं थी। लेकिन समय ऐसा था कि राजकुमारों और जागीरदारों को हमेशा अपनी जनता के समर्थन की तलाश करनी पड़ती थी।और यद्यपि वे (लोग) धार्मिक पूर्वाग्रहों और सांप्रदायिकता के प्रभाव के कारण राजतंत्र के उच्च पुरोहित बन गए थे, फिर भी उस समय आम संघर्षों में भाग लेकर वे इतने शक्तिशाली थे कि वे या तो विद्रोह करके या किसी शत्रु राजकुमार की मदद करके अपने राज्य की शक्ति को नष्ट कर सकते थे। सिराजुद्दौला के विरुद्ध प्रजा, जागीरदारों और सामंतों द्वारा किए गए सफ़ल विद्रोह का उदाहरण दिया जा सकता है। इसका एक और ज्वलंत और ताजा उदाहरण 1857 के तथाकथित विद्रोह में मिलता है, जिसमें देश की पूरी जनता, अपने धार्मिक मतभेदों को कुछ समय के लिए भूलकर, कंपनी के अमानवीय अत्याचारों से क्षुब्ध होकर अचानक उठ खड़ी हुई थी।

इन सभी बातों ने शासकों के मन पर कुछ हद तक अच्छा प्रभाव डाला, आधुनिक मशीनरी के, व्यापारिक प्रतिद्वंद्विता और शोषण के अभाव के कारण, व्यापार की स्थितियाँ ऐसी नहीं थीं, जो समाज की तत्कालीन सामाजिक संरचना पर कोई अवांछनीय या हानिकारक प्रभाव डाल सकें। उस समय भूमिकर लगाने से लेकर मज़दूरों की मज़दूरी तक, व्यापारिक लेन-देन सभी वस्तु विनिमय के माध्यम से किए जाते थे। सिक्कों का प्रचलन दुर्लभ था। इसके अलावा, दूध और अन्य वस्तुओं को न बेचने की प्रचलित प्रथा और घुड़सवारी, खेती आदि में मवेशियों के उपयोग की अनिवार्यता के कारण सभी प्रकार के मवेशी पाले जाते थे। पालतू पशुओं के रख-रखाव, सुधार और प्रशिक्षण के लिए राज्य द्वारा सभी सुविधाएँ प्रदान की जाती थीं।

इनसे लाखों गरीब लोगों को स्वतंत्र व्यवसाय और किसानों को पर्याप्त खाद और मुफ़्त चारागाह मिलते थे। इतना ही नहीं, अधिकांश राज्यों में शोषण के लिए कोई वन विभाग नहीं था। इसी तरह, इस तरह के लाभ के लिए कोई मार्जिन न होने के कारण हर केंद्र पर व्यापारी किसी विशेष उद्योग को लगाने और उसके निर्यात को सुविधाजनक बनाने के लिए अपना सर्वश्रेष्ठ प्रयास करते थे। वास्तव में,बात यह है कि उन दिनों प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किसी न किसी तरह के काम में आसानी से लग सकता था और रेलवे की अनुपस्थिति और वर्तमान परिस्थितियों के कारण उन्हें न तो वर्तमान समय की तरह कड़वे भोजन का स्वाद लेना पड़ता था, न ही घी, दूध, रोटी और कपड़े जैसी जीवन की आवश्यकता की कमी महसूस होती थी। न ही उन्हें छोटे अधिकारियों द्वारा परेशान किया जाता था क्योंकि उन दिनों प्रत्येक गाँव के बुजुर्ग ही कानून बनाते थे और कार्यपालिका और सरकार का प्रशासन करते थे।आम तौर पर उनके गांव की न्यायपालिका और राज्य नहीं थे।**

* सामंत

** एशिया का साम्राज्य अध्याय VIII देखें

✶

अध्याय–5
संधियाँ

राजनीतिक दृष्टिकोण से ईस्ट इंडिया कंपनी और क्राउन के शासन काल को पाँच अवधियों में विभाजित किया जा सकता है, अर्थात :-

1.1760 से1808 ई. तक का काल जिसमें कंपनी अपने लिए शांति चाहती थी और उस काल में की गई सभी संधियाँ इसी उद्देश्य से की गई थीं।

2. 19वीं शताब्दी का पहला भाग जिसमें साम्राज्यवादी विस्तार की बड़ी योजनाएँ उसके क्षितिज पर उभरीं।

3. 19वीं शताब्दी का दूसरा भाग जिसमें राज्यों को अलग अस्तित्व और नाममात्र की संप्रभुता बनाए रखते हुए उन्हें शक्तिहीन बनाने की नीति अपनाई गई।

4. 19वीं शताब्दी का अंतिम दशक जिसमें भारत में नई जागृति से घबराई सरकार ने अपने एजेंटों और धीमे अधिकारियों आदि के माध्यम से राज्यों में सरकारी मशीनरी पर क़ब्ज़ा करने की नीति अपनाई, दूसरे शब्दों में, राज्यों में अपना अप्रत्यक्ष शासन स्थापित करने की नीति अपनाई।

5. अंत में वह काल जिसमें भारत पर कब्ज़ा करने और उस पर कब्ज़ा करने के लिए भारतीय राज्यों की शक्तियों और संसाधनों का उपयोग करने की योजना बनाई गई।

हम पहले काल से निपट चुके हैं। यह दिखाया गया है कि विभिन्न स्थानों पर राजाओं और उनके विषयों की परिस्थितियाँ अलग-अलग थीं। कहीं राजकुमार और लोग मौजूदा परिस्थितियों से असंतुष्ट थे और कहीं राजकुमारों को गुप्त तरीक़ों से संधि करने के लिए मजबूर होना पड़ा लेकिन इसकी नीति का मुख्य स्वर शांति बनाए रखना और यह देखना था कि इसके हितों को ख़तरे में डालने वाला कुछ भी न हो, इसके कारण स्पष्ट हैं, सबसे पहले, कंपनी अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रही थी, इसके अलावा, फ्रांसीसी भी भारत पर अपने वर्चस्व का झंडा फहराने की पूरी कोशिश कर रहे थे। उन्होंने लोगों को कंपनी के ख़िलाफ़ भड़काया और उनकी मदद की इसलिए कंपनी को अपनी आत्मरक्षा में कुछ संधियाँ करने

के लिए मजबूर होना पड़ा। टीपू सुल्तान को संबोधित मार्क्विस वेलेसली के पत्र से निम्नलिखित उद्धरण उस अवधि में काम करने वाली मानसिकता पर प्रकाश डालेगा। पत्र में कहा गया है : –

'महामहिम और हम बहुत अच्छे दोस्त हैं, इसलिए हम अपने प्यार से ईर्ष्या करते हैं। फ्रांसीसी अविश्वसनीय गणतंत्रवादी हैं। हम उन्हें आपसे बेहतर जानते हैं। वे आपके मुसलमानों को लोकतंत्र सिखाएंगे, अगर आप उन्हें अपने पास आने देंगे तो दोस्ती में हम ऐसा नहीं होने दे सकते। वे आपके सिंहासन को कमज़ोर कर देंगे, निश्चित रूप से हमें इसे गिराने देना बेहतर था, बजाय इसके कि हम इसका अपमान देखें। हमें इसे दुष्ट दुनिया से दूर करना चाहिए और इसका विश्वास वोल्टेयर के मज़ाक़ या रूसियों की कुतर्कों से डगमगाता है और जब आप समय से पहले चले जाएंगे तो हम आपके लोगों के शरीर और आत्मा की देखभाल करेंगे। हम संभवतः एक धर्म प्रान्त की स्थापना कर सकते हैं या कम से कम मैसूर के बिशप को नियुक्त कर सकते हैं। यही हमारा तरीक़ा है। हम केवल ईसाई साथियों को सताते हैं, मंदिर और मस्जिदें अंत तक हमारे लिए बनी रहेंगी, बशर्ते कि अस्थाई व्यवस्थाओं को अपने हाथ में ले लें। नहीं, आपके लोगों में फ्रांसीसी सिद्धांतों के प्रचार की बदनामी को देखने से पहले, हम कर-संग्रहकर्ताओं को मोहम्मद, या ब्रह्मा या दोनों की ओर मोड़ने के लिए तैयार हैं और भगवान विष्णु या जगन्नाथ के सम्मान में मूर्तियों, नगाड़ों और अग्नि सलामी के लिए तैयार हैं, यदि आप हमें श्रीरंगपट्टम में जाने दें।*

इस समय की गई संधियाँ भी इसी मानसिकता को दर्शाती हैं। उस समय की संधि, उदाहरण के लिए, निजाम सिंधिया और अलवर आदि के साथ संपन्न हुई। इसमें अन्य राजकुमारों के साथ स्वतंत्र रूप से संधि करने की शर्त शामिल थी। इसके अलावा सेनाओं के रखरखाव पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया गया था। वास्तव में, नीति का प्रमुख नोट इसकी पारस्परिकता थी। कृपया केपी पद्मनाभ मेनन द्वारा केरल का इतिहास भी देखें पृष्ठ 338।

हैदराबाद के सूबेदार, अवध के नवाब वजीर और अर्काट के नवाब के साथ संधियाँ।जैसे ही डुप्ले की हार के बाद फ्रांसीसी षडयंत्र और फ्रांसीसी वर्चस्व का डर दूर हुआ, ईस्ट इंडिया कंपनी ने साम्राज्य विस्तार की नीति

अपनाई। अब राजाओं के साथ आपसी दोस्ती और गठबंधन का सवाल ही नहीं था। अधीनस्थ गठबंधन की संधियाँ 'पारस्परिक गठबंधन' की संधियों के साथ की गईं। इन संधियों की तीन खास विशेषताएँ थीं। सबसे पहले, इसने (कंपनी ने) अपने सहयोगियों से दूसरे राज्यों के साथ बातचीत के अधिकार को त्यागने की माँग की। दूसरे, सुरक्षा या मदद के लिए कंपनी द्वारा प्रदान की गई सेना का भुगतान राज्यों द्वारा किया जाना था। तीसरे, गठबंधन राज्यों को एक निश्चित राशि का कर देना था या, उनकी सुरक्षा के लिए बनाए गए सहायक बलों के खर्च को वहन करना था, संक्षेप में, अब कंपनी प्रीमियम इंटरपर्स की स्थिति से आगे बढ़कर श्रेष्ठता के दावे पर पहुँच गई थी।

हमने जो कहा है उसे स्पष्ट करने के लिए हम निम्नलिखित धारा का हवाला देते हैं जिसे निजाम के साथ पहले से की गई संधि में गुप्त रूप से जोड़ा गया था। इसमें कहा गया है:-

'भविष्य में किसी भी कारण से महत्वपूर्ण मामलों पर कोई पत्राचार नहीं किया जाएगा।राव पंडित प्रधान की सरकार या उनके किसी आश्रित के साथ, नवाब या आसफजाह बहादुर या माननीय कॉर्नपनीस सरकार द्वारा दोनों अनुबंध पक्षों के पारस्परिक विशेषाधिकार और सहमति के बिना कोई समझौता नहीं किया जा सकता है।

अवध के नवाब वज़ीर शुजाउद्दौला के साथ की गई संधि से निम्नलिखित बातें भी उस काल में काम करने वाली मानसिकता को प्रकट करती हैं :-

'यदि भविष्य में किसी भी समय महामहिम शुजाउद्दौला के प्रभुत्व पर आक्रमण होता है...तो ईस्ट इंडिया कंपनी अपनी सेना के एक हिस्से या पूरी सेना के साथ उनकी सहायता करेगी। यदि अंग्रेजी कंपनी की सेना महामहिम की सेवा में नियोजित होती है, तो उसका असाधारण व्यय महामहिम द्वारा वहन किया जाएगा।' 'अब, राज्यों के क्षेत्रों में सहायक सैनिकों के रख-रखाव के लिए कंपनी द्वारा उनके संरक्षण के लिए धन का भुगतान करने के संबंध में, निजाम के साथ संपन्न संधि से निम्नलिखित बातें लागू होंगी** :-

'सामान्य रक्षा और संरक्षण की इस संधि को पूरा करने के उद्देश्य से

महामहिम नवाब आसफजाह सहमत हैं कि वर्तमान स्थायी सहायक बल में छह बटालियनों के बंदूकों और तोपखाना पुरुषों के उचित अनुपात के साथ दो बटालियन और एक घुड़सवार सेना रेजिमेंट को हमेशा के लिए जोड़ा जाएगा, जिनमें से प्रत्येक में एक हजार फायरलॉक होंगे और एक घुड़सवार सेना रेजिमेंट पांच सौ मज़बूत (बंदूकों और तोपखाना पुरुषों के अपने अनुपात के साथ), ताकि माननीय ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा महामहिम को प्रदान की गई पूरी सहायक सेना में अब से आठ बटालियन सिपाहियों (या आठ हज़ार फायरलॉक) और दो घुड़सवार सेना रेजिमेंट (या एक हजार घोड़ों) के साथ बंदूकों, यूरोपीय तोपची, लास्कर और पायनियरों की अनिवार्य पूर्ति के साथ युद्ध के सामान और गोला-बारूद से पूरी तरह सुसज्जित, इस बल को महामहिम के क्षेत्रों में स्थायी रूप से तैनात किया जाना है।

उपर्युक्त अतिरिक्त बल का वेतन मौजूदा सहायक बल की दर से गणना की जाएगी और महामहिम के क्षेत्रों में उक्त अतिरिक्त बल के प्रवेश के दिन से आएगा।

* मार्क्विस ऑफ़ द वेलेस्ली के डिस्पैच खंड । संख्या X: C-6

** एचिसन का ग्रंथ और सनद चौथा संस्करण-1909

अध्याय–6
अधीनस्थ अलगाव

लेकिन, साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा रखने वाली सभी शक्तियों की तरह, ईस्ट इंडिया कंपनी को अब लगा कि राज्यों को अपने अधीन रखना असंभव है, जबकि वे वास्तव में स्वतंत्र थे। इसलिए, इसने अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अधीनस्थ अलगाव की नीति अपनाई, अर्थात, आश्रित राज्यों के लिए अधीनस्त सहयोग को कम करना और इस प्रकार अपने प्रभाव और शक्ति का विस्तार करने में सहजता प्राप्त करना। इसे समझाने और स्पष्ट करने के लिए हम केवल निम्नलिखित संधि का हवाला देंगे जो एक विशिष्ट संधि है :-

उदयपुर संधि

माननीय अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी और उदयपुर के महाराजा भीम सिंह राणा के बीच संधि, माननीय कंपनी की ओर से श्री थियोफिलस मेटकाफ द्वारा महामहिम सबसे महान मार्क्विस ऑफ हेस्टिंग्स, केसी गवर्नर जनरल और महाराणा की ओर से ठाकुर अजीत सिंह द्वारा महाराणा द्वारा दी गई पूर्ण शक्तियों के आधार पर संपन्न हुई।

अनुच्छेद 1.

दोनों राज्यों के बीच पीढ़ी दर पीढ़ी स्थायी मित्रता, गठबंधन और हितों की एकता रहेगी तथा एक के मित्र और शत्रु दोनों के मित्र और शत्रु होंगे।

अनुच्छेद 2.

ब्रिटिश सरकार उदयपुर रियासत और क्षेत्र की रक्षा करने के लिए प्रतिबद्ध है।

अनुच्छेद 3.

उदयपुर के महाराणा हमेशा ब्रिटिश सरकार के अधीनस्थ सहयोग में कार्य करेंगे और उसकी सर्वोच्चता को स्वीकार करेंगे तथा अन्य सरदारों या राज्यों के साथ कोई संबंध नहीं रखेंगे।

अनुच्छेद 4.

उदयपुर के महाराणा ब्रिटिश सरकार की जानकारी और अनुमति के

बिना किसी सरदार या राज्य के साथ कोई समझौता नहीं करेंगे, लेकिन मित्रों और संबंधियों के साथ उनका सामान्य सौहार्दपूर्ण पत्राचार जारी रहेगा।

अनुच्छेद 5.

उदयपुर के महाराजा किसी पर आक्रमण नहीं करेंगे तथा यदि किसी के साथ आकस्मिक रूप से कोई विवाद उत्पन्न हो जाए तो उसे ब्रिटिश सरकार के मध्यस्थता एवं निर्णय के लिए प्रस्तुत किया जाएगा।

अनुच्छेद 6.

उदयपुर के वास्तविक भूभाग के राजस्व का एक चौथाई भाग ब्रिटिश सरकार को पांच वर्ष तक प्रतिवर्ष कर के रूप में दिया जाएगा तथा उसके पश्चात तीन बटा आठवां भाग स्थायी रूप से दिया जाएगा।कर के कारण महाराणा किसी अन्य शक्ति से कोई संबंध नहीं रखेंगे, तथा यदि कोई उस प्रकार का दावा करता है तो ब्रिटिश सरकार उसका उत्तर देने के लिए प्रतिबद्ध होगी।

अनुच्छेद 7.

जबकि महाराणा यह दावा करते हैं कि उदयपुर के कुछ भाग अनुचित साधनों से दूसरों के कब्जे में चले गए हैं तथा वे उन स्थानों को वापस करने की मांग करते हैं, ब्रिटिश सरकार सटीक जानकारी के अभाव में इस विषय पर कोई सकारात्मक कार्रवाई करने में सक्षम नहीं है, लेकिन उदयपुर राज्य की समृद्धि के पुनरुद्धार को सदैव ध्यान में रखेगी तथा प्रत्येक मामले की प्रकृति का पता लगाने के पश्चात अपने अधिकारों का उपयोग करेगी। उस कार्य को पूरा करने के लिए सर्वोत्तम प्रयास किए जाएंगे, प्रत्येक अवसर पर आपत्ति की जाएगी, जिस पर ऐसा करना उचित हो। ब्रिटिश सरकार की सहायता से उदयपुर राज्य को जो भी स्थान वापस किए जाएंगे, उनके राजस्व का तीन बटा आठवां हिस्सा ब्रिटिश सरकार को स्थायी रूप से दिया जाएगा।

अनुच्छेद 8.

उदयपुर राज्य की सेना को ब्रिटिश सरकार की मांग पर, उसके साधनों के अनुसार प्रदान किया जाएगा।

अनुच्छेद 9.

उदयपुर के महाराणा हमेशा अपने देश में पूर्ण शासक होंगे और ब्रिटिश अधिकार क्षेत्र उस रियासत में प्रवेश नहीं करेगा।

अनुच्छेद 10.

वर्तमान संधि दिल्ली में संपन्न हुई है और श्री चार्ल्स थियोफिलस मेटकाफ और ठाकुर अजीत सिंह बहादुर द्वारा हस्ताक्षरित और मुहरबंद है, महामहिम गवर्नर जनरल और महाराणा भीम सिंह द्वारा इसका अनुसमर्थन इस तिथि से एक महीने के भीतर पारस्परिक रूप से दिया जाएगा।

(हस्ताक्षरित) सी.टी. मेटकाफ।

(हस्ताक्षरित) ठाकुर अजीत सिंह

(हस्ताक्षरित) हेस्टिंग्स।

22. जनवरी 1818 को महामहिम गवर्नर जनरल द्वारा कैंप ऊचर में अनुमोदित।

(हस्ताक्षरित) जे. एडम।

गर्वनर जनरल के सचिव।

मामला यहीं समाप्त नहीं हुआ। 1813 में लॉर्ड हेस्टिंग्स के आगमन के बाद इस नीति ने और भी भयावह रूप धारण कर लिया। राजाओं से धन ऐंठना, छोटे-मोटे बहाने बनाकर उनके क्षेत्रों को हड़पना या उनके अधिकारों और शक्तियों को कम करना रोजमर्रा के अनुभव की विशेषता बन गई। इसका परिणाम यह हुआ कि एक ओर, राज्यों के खजाने खाली हो गए और दूसरी ओर, कंपनी की इन मांगों को पूरा करने के लिए देशी शासकों द्वारा लोगों पर अधिक से अधिक कर लगाया जाने लगा।

इसके अलावा, कंपनी के अधिकारी अपने व्यवहार में सबसे घटिया हथकंडे अपनाने लगे। संधियों को हवा में उड़ा दिया गया और बिना किसी कारण या तर्क के कई क्षेत्रों को अपने अधीन कर लिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि देश के लगभग सभी भागों में असंतोष की आग भड़क उठी। हालाँकि इस समय कंपनी का ख़ौफ़ और प्रभाव काफ़ी बढ़ गया था और राजपूताना, मध्य भारत, गुजरात और काठियावाड़ के लगभग सभी राज्य, जिनकी संख्या लगभग 300 थी, उसके अधीन आ गए थे, फिर भी

यह सिखों, मराठों और लोगों के बीच बढ़ते असंतोष को रोकने में विफल रहा। इसकी मनमानी के कारण। इतना ही नहीं 1817 में राजपूताना के एक कुख्यात डाकू अमीर खान ने पिंडारियों' की मदद से राजपूताना के एक बड़े हिस्से को अपने अधीन कर लिया, और पिंडारियों* ने कम से कम कुछ समय तक इस हद तक लूटपाट की और हेस्टिंग्स की चैन की रातों की नीदं हराम हो गई। ऐसा इसलिए नहीं था कि वे खुद शक्तिशाली थे, बल्कि इसलिए कि उन्हें कुछ मराठों से मदद मिली थी तथा राज्य और आम लोग। आखिरकार, कंपनी ने उसकी ताकत के आगे घुटने टेक दिए। उन्होंने उसे उस जादुई इलाके का शासक स्वीकार कर लिया, जिसे अब टोंक राज्य के नाम से जाना जाता है। इस शर्त पर कि वह लूटपाट बंद कर देगा, अपनी सेना को भंग कर देगा और ज़रूरत पड़ने पर अपने सभी संसाधनों से कंपनी की मदद करेगा। काठियावाड़ के कुछ छोटे सरदारों और तालुकेदारों ने कंपनी को इतना परेशान किया कि कंपनी को उनके साथ अपराधी जनजाति के सदस्यों जैसा व्यवहार करने की जरूरत महसूस हुई। कंपनी ने उन्हें उचित समय पर अपना कर अदा करने, अपने क्षेत्रों में शांति और व्यवस्था बनाए रखने और अच्छा व्यवहार रखने के लिए प्रतिभूति और साझीदारियाँ देने का आदेश दिया। कच्छ भी दो प्रतिद्वंद्वी सरदारों द्वारा शासित था और कंपनी को उन दोनों के साथ अलग-अलग संधियाँ करने के लिए मजबूर होना पड़ा।

आम तौर पर लोगों ने सोचा था कि पिंडारियों के सबक और आम तौर पर असंतोष को कंपनी इतनी जल्दी नहीं भूलेगी। लेकिन वे जल्द ही भ्रमित हो गए। लॉर्ड बेंटिक और उनके बाद आए लॉर्ड डलहौजी ने देश पर और भी अधिक दबंगई से शासन किया। अगर उन्होंने कुछ नए राज्य बनाए, तो उन्होंने भारत के नक्शे से कई राज्यों के नाम भी मिटा दिए। मामले इस हद तक पहुँच गए कि श्री डब्ल्यूएम टरेंस एम.पी. के शब्दों में 'हर देशी राजा, चाहे वह खुद को स्वतंत्र कहे या संरक्षित, यह मानता था और तर्क के साथ मानता था कि उसका हर कार्य, चाहे वह अपने रईसों या अपने लोगों को बेहतरी के लिए किया गया हो, निश्चित रूप से होगा सर्वोच्च सत्ता द्वारा लालची विश्वासघाती या धमकी भरे शत्रुतापूर्ण के रूप में माना जाना,

निश्चित है।वित्तीय मांगों और क्षेत्रीय अतिक्रमण की दिन में उसके वेतन। और रात में उसकी नींद में खलल रहेगा। जिस खेत की देखभाल उसे सौंपी गई थी, जिसमें उसने संतोष, विश्वास और कृतज्ञता के बीज बोए थे, वह तथ्यों, संदेह, क्रोध, घृणा और मूक दिखने वाले चेहरे को एक दिन के लिए प्रतिपूर्ति के लिए लाने के लिए अभिशप्त लगता है और यदि वह एक सच्चा आदमी है, अपनी जाति, अपने पंथ और अपने देश के सम्मान के प्रति सच्चा है, तो वह अपने हाथों का उपयोग भलाई करने तथा हानिकारक तथ्यों को तितर बितर ककरने में करे।

फिर भी कुछ सांत्वना हो सकती थी, अगर ऐसा व्यवहार केवल राजकुमारों तक ही सीमित होता। लेकिन ऐसा नहीं होना था। कंपनी के लालची सेवकों ने लोगों को अपने दिल की इच्छानुसार परेशान किया। उनकी संपत्ति या व्यक्ति को सुरक्षा देने के बजाय, उन्होंने कर संग्रह व्यवसाय को वैध लूट में बदल दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि पूरा देश बहुत उत्तेजित और परेशान था। ऐसा लग रहा था, मानो ईश्वर की इच्छा ही कंपनी के माध्यम से इस अत्याचार से ग्रस्त देश में एक बार फिर स्वतंत्रता की सुलगती आग को जलाने का काम कर रही थी।*

* लुटेरों का एक समुदाय!
* संदर्भ के लिए, ली वार्नर-भारत के मूल निवासी राज्य देखें।
पणिक्कर - भारतीय राज्य और भारत सरकार, टोरेंस-एशिया में साम्राज्य

अध्याय–7
प्रथम स्वतंत्रता संग्राम

अंततः असंतोष की सुलगती आग एक देशव्यापी षडयंत्र की भीषण आग में बदल गई। भारत के प्रत्येक प्रांत में स्वतंत्रता की भावना से ओतप्रोत लोगों ने अंग्रेजों को बोरी बिस्तर लेकर भगाने के लिए समाजों का गठन किया। इन समाजों के सदस्य गांवों और शहरों में दूर-दूर तक फैल गए और उन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ दुश्मनी और घृणा की दबी हुई भावनाओं को हवा दी। प्रत्येक स्थान पर लोगों को समाज बनाने या संगठित होने और युद्ध सामग्री एकत्र करने के लिए राजी किया गया। इन तैयारियों के लिए कई समाजों और व्यक्तियों को असहनीय कष्ट और पीड़ा सहनी पड़ी। कई लोगों ने, हालांकि उन्हें बड़ी जागीरें और धन विरासत में मिला था, भविष्य के लाभ या हानि की परवाह किए बिना, इस भूले-बिसरे स्वतंत्रता संग्राम में पूरे दिल से भाग लेना शुरू कर दिया। कई लोगों ने अपनी कमाई माँ के चरणों में और कई ने अपना जीवन ही अर्पित कर दिया। लेकिन इस विद्रोह की रीढ़ वे युवा थे जिन्होंने विद्रोह के लिए अपने दिल और आत्मा को समर्पित कर दिया। उन्होंने अपने अदम्य साहस और आत्म-बलिदान के साथ, मुट्ठी भर चने खाकर और कभी-कभी तो बिना भोजन के भी, दूर-दूर तक यात्रा की और गांवों के लोगों को अंग्रेजों के खिलाफ उठ खड़े होने के लिए प्रेरित किया।उन्होंने जाति, धर्म या पंथ से परे सभी लोगों से स्वतंत्रता के बढ़ते झंडे के चारों ओर इकट्ठा होने और मातृभूमि को गुलामी की गुलामी से मुक्त करने की अपील की। असफलताओं और अपमानों या प्रशंसाओं से विचलित हुए बिना, वे अपनी बात पर अड़े रहे और आखिरकार देश को एक युद्धघोष के लिए संगठित करने में सफ़ल रहे।

इसकी सफ़लता में एक और कारक जिसने योगदान दिया, वह यह था कि कई राजकुमारों और धनी व्यक्तियों की आंदोलन के साथ पूरी सहानुभूति थी और कुछ ने अपना पूरा समर्थन और सहयोग दिया। लेकिन क्रांति के युवा नेताओं ने भी वही गलती की जो मानव इतिहास में कई बार दोहराई गई है। जो भी बड़ा राजकुमार या धनी व्यक्ति किसी भी उद्देश्य से उनकी

मदद करने के लिए आगे आया, उसे स्थानीय क्रांतिकारी संगठन की बागडोर सौंप दी गई। उन्हें यह भी नहीं सूझा कि ऐसे समुदाय और वर्ग, जिनमें स्वार्थी भावनाएँ स्वाभाविक रूप से प्रबल होती हैं, आसानी से उस उच्च स्थान से गिर सकते हैं, जिस पर उन्हें अब बैठाया गया है।

लेकिन यह तो संयोग की बात है। अंततः क्रांति शुरू हुई। भारत जैसे विशाल देश में, जहाँ संचार और परिवहन के आधुनिक साधन नहीं थे, लोग इतने सुसंगठित थे,कि यदि सभी जगह विद्रोह एक साथ सही समय पर होते और यदि उसके समर्थक अंत तक डटे रहते, और विश्वासघात नहीं करते, तो आधुनिक भारत का इतिहास अलग तरह से लिखा जाता। लेकिन दुर्भाग्य से एक और ग़लती हो गई। यहाँ भी लोग कंपनी की मनमानी से इतने क्षुब्ध थे कि वे अपने आपको उचित सीमा में नहीं रख सके, जिसका परिणाम यह हुआ कि बंगाल की कुछ ताकतों ने उचित समय से थोड़ा पहले ही क्रांति शुरू कर दी। अन्य स्थानों के लोग भी अधीर हो गए और उनमें से जिसने भी इसके बारे में सुना, वह उचित समय की प्रतीक्षा किए बिना ही क्रांति में शामिल हो गया। इसलिए, इसका उचित प्रबंधन, निर्देशन और मार्गदर्शन नहीं हो सका। फिर भी क्रान्ति बहुत व्यापक और भयंकर थी। उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे बड़े प्रांतों में ब्रिटिश राज का अस्तित्व समाप्त हो गया था। वहाँ, गाँवों में भी अंग्रेजों को बड़ी मुश्किल से शरण मिल पाती थी। सैनिक और नगरवासी सभी क्रान्ति में शामिल हो गए। अन्य प्रांतों ने भी यही किया होता, यदि कम्पनी ने लालच देकर कुछ वादे न किए होते और राजाओं ने अपनी अंतर्निहित कायरता और स्वार्थ के कारण लोगों के साथ विश्वासघात न किया होता। दक्षिण में, जहाँ उनके पास स्थानीय क्रान्तिकारी ताकतों की बागडोर थी, उन्होंने उसे हतोत्साहित किया और दबा दिया। इसी तरह, पंजाब के राजाओं ने इस कम्पनी की सहायता के लिए अपनी सेनाएँ भेजीं। कई राजाओं ने मनोवैज्ञानिक क्षण में उनकी सहायता करने से इनकार कर दिया या बहाने बनाने लगे, भले ही उन्होंने ऐसा करने का वादा किया था। फिर उत्तर प्रदेश कैसे पीछे रह सकता था। इसने कुछ गद्दार भी पैदा किए और आज हम जो राज्य और जमींदारी देखते हैं, उनमें से अधिकांश का अस्तित्व उसी विश्वासघात के कारण है। कश्मीर के शासक ने तो यहाँ तक

किया कि वहाँ शरण लेने गए क्रान्तिकारियों को मौत के घाट उतार दिया।

लेकिन यहाँ हमारा उद्देश्य क्रांति का इतिहास लिखना नहीं है। अगर हमने इसके बारे में इतना कुछ लिखा है, तो सिर्फ इसलिए कि इसका राज्य से कुछ नज़दीकी संबंध है क्योंकि राज्यों ने हमेशा की तरह पहले अपने हितों को आगे बढ़ाने के लिए क्रांति का समर्थन किया लेकिन बाद में इसमें मदद करने के बजाय, उन्होंने इसे कुचलने के लिए सब कुछ किया। बेचारे बहादुरशाह' ने दूसरे राजाओं को दिल्ली में इकट्ठा हुई असंख्य क्रांतिकारी ताक़तों का नेतृत्व संभालने के लिए मनाने की व्यर्थ कोशिश की और कम से कम विद्रोह से उन्हें फ़ायदा तो हुआ क्योंकि इस विद्रोह के परिणामस्वरूप ही कई नए राज्य अस्तित्व में आए और भारत का प्रशासन बदल गया। महारानी विक्टोरिया के हाथों में सौंप दिया गया, जिन्होंने निम्नलिखित घोषणा जारी की :-

'चूँकि कई महत्वपूर्ण कारणों से, हमने भारत सरकार को अपने अधीन लेने का संकल्प लिया है, जिसे अब तक माननीय ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा हमारे लिए ट्रस्ट में प्रशासित किया गया था, हम इन प्रस्तुतियों द्वारा अधिसूचित करते हैं और घोषणा करते हैं कि हमने उक्त सरकार को अपने ऊपर ले लिया है और हम उक्त क्षेत्रों के भीतर अपने सभी विषयों से हमारे, अधीन उत्तराधिकारियों और उत्तराधिकारियों के प्रति वफ़ादार रहने और सच्ची निष्ठा रखने का आह्वान करते हैं। हम भारत के देशी राजाओं को यह घोषणा करते हैं कि माननीय ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा या उसके अधिकार के तहत उनके साथ की गई सभी संधियाँ और अनुबंध, हमारे द्वारा स्वीकार किए जाते हैं, और उनका ईमानदारी से पालन किया जाएगा, और हम उनकी ओर से भी इसी तरह की टिप्पणियों की अपेक्षा करते हैं। हम अपनी क्षेत्रीय संपत्तियों का कोई विस्तार नहीं चाहते हैं और जबकि हम अपने प्रभुत्व पर किसी भी आक्रमण या अपने अधिकारों को दंड के बिना प्रयास करने की अनुमति नहीं देंगे, हम दूसरों के अधिकारों पर किसी भी तरह का अतिक्रमण नहीं होने देंगे। हम देशी राजाओं के अधिकारों, सम्मान और सम्मान का अपने अधिकारों की तरह सम्मान करेंगे।

हम अपने भारतीय क्षेत्रों के मूल निवासियों के प्रति उन्हीं कर्तव्यों से बंधे

हैं, जो हमें अपने अन्य सभी विषयों से बांधते हैं, और सर्वशक्तिमान ईश्वर के आशीर्वाद से हम उन दायित्वों को ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा से पूरा करेंगे।'

* उन दिनों दिल्ली के अंतिम और नाममात्र के सम्राट।

★

अध्याय–8
नीति में परिवर्तन

स्वाभाविक रूप से 1857 के तथाकथित सिपाही विद्रोह के बाद, देशी राज्यों के प्रति सरकार की नीति में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। अब प्रदेशों के विलय की संभावना निश्चित रूप से समाप्त हो गई थी। सरकार ने उन्हें आश्वस्त किया कि महारानी चाहती हैं कि उनका शासन कायम रहे। इससे यह नहीं सोचना चाहिए कि अंग्रेज, राज्यों (राजकुमारों) के सच्चे मित्र थे या उन्होंने ऐसा इसलिए किया क्योंकि वे विद्रोह के समय ब्रिटिश अधिकारियों की मदद करने में उनकी प्रत्यक्ष और प्रमुख भूमिका से प्रसन्न थे। उन्होंने ऐसा केवल इसलिए किया क्योंकि ऐसा करने से उन्हें सबसे अधिक लाभ होता था। उदाहरण के लिए, उन्होंने देखा (वास्तव में वे जानते थे) कि राज्यों के विलय से देशी राज्यों के लोगों को वही प्राथमिक अधिकार और संवैधानिक स्थिति मिलती है जो उन्हें प्राप्त है और इस प्रकार वे आवश्यकता पड़ने पर आसानी से आंदोलन कर सकते हैं और उनका विरोध कर सकते हैं। इसके अलावा, वे जानते थे कि राजाओं को झूठे और दिखावटी विशेषाधिकार देकर और उनके निजी अहंकार को छूकर आसानी से ठगा जा सकता है, इसलिए उनके क्षेत्रों को हड़पने का कोई फायदा नहीं था।

इसलिए, जहाँ उन्होंने अपने शासन को कायम रखने का संकल्प लिया, वहीं उन्होंने एक ऐसी नीति भी अपनाई, जो उनकी शक्ति को लगातार कमज़ोर करती, उनके और उनकी प्रजा के बीच खाई पैदा करती और उन्हें आत्मनिर्भर नहीं बनने देती। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए, उन्होंने नई-नई तरक़ीबें अपनाईं। जो संधियों में नहीं था, उसे अब विशेष अवसरों का लाभ उठाकर प्रथाओं और परंपराओं के रूप में पेश किया गया और जो अच्छी आय का स्थायी स्रोत माना जाता था, उसे अपने हाथों में ले लिया गया-यानी नमक का एकाधिकार, जिसकी सामान्य उपयोगिता पर सवाल नहीं उठाया जा सकता, उसे अपने हाथों में ले लिया गया। इस उद्देश्य के लिए प्रत्येक राज्य के साथ विशेष संधियाँ की गईं, जिसके तहत यह आदेश

दिया गया कि भविष्य में किसी को भी अपने-अपने क्षेत्रों में नमक बनाने की अनुमति नहीं दी जाएगी। यही बात अफीम के एकाधिकार के बारे में भी कही जा सकती है। इनसे भारतीय राज्यों के लाखों लोग न केवल नमक बनाने की कला से वंचित हो गए, बल्कि उनकी आजीविका के स्वतंत्र स्रोत भी छिन गए। इनके अलावा निम्नलिखित बिंदु और युक्तियां विशेष उल्लेखित हैं :-

1. प्रत्येक राज्य से कर वसूलना या इसके बदले में राज्य के खर्च पर राज्य के क्षेत्रों में अंग्रेजी अधिकारियों के अधीन सहायक सेना रखना।

2. राज्यों को युद्ध करने वाली और आधुनिक सेना रखने की अनुमति न देना।

3. राज्य के जुलूसों और भव्यता के लिए रखे गए बलों की संख्या को भी सीमित करना।

4. राज्यों के क्षेत्रों में आधुनिक हथियारों, गोला-बारूद और सैन्य भंडार के मुक्त निर्माण या बिक्री पर रोक लगाना।

5. किसी भी तरह से राज्यों के क्षेत्रों में रेलवे और सड़कों का निर्माण करना, जहाँ सरकार इसे आवश्यक समझे।

6. राज्यों के क्षेत्रों के भीतर छावनियाँ स्थापित करना।

7. राज्यों से यह अपेक्षा करना कि वे अपने क्षेत्रों से गुजरते समय सैनिकों के लिए आवश्यक आपूर्ति और वस्तुओं के प्रावधान के लिए हर सुविधा दें।

8. राजधानी के निकट राज्य क्षेत्र में राज्य के खर्च पर एक रेजीडेंसी स्थापित करना।

9. रेजीडेंसी की सीमाओं को ब्रिटिश क्षेत्र मानना।

10. राज्य क्षेत्रों में रेजीडेंट और राजनीतिक एजेंटों का वार्षिक दौरा।

11. राज्यों को यूरोपीय ब्रिटिश नागरिकों और अन्य स्वतंत्र देशों के सभी व्यक्तियों को विशेष विशेषाधिकार देने के लिए मजबूर करना।

12. अंग्रेजों के लिए खदानों आदि के ठेके सुरक्षित करने का प्रयास करना।

13. छोटे सरदारों को ऐसी शिक्षा देना कि वे केवल मूर्ख, व्यभिचारी, अत्याचारी और यूरोपीय फ़ैशन, विलासिता और सजावट के प्रेमी बन जाएं।

14. रेजीडेंट और अन्य धीमे अधिकारियों के माध्यम से राज्यों में ब्रिटिश माल का प्रसार बढ़ाना और स्थानीय व्यापार और उद्योगों को कुचलना।

15. राज्यों में सार्वजनिक जीवन को दबाना और दबाने में मदद करना।

16. राज्य के एक निश्चित हिस्से को पट्टे पर या किसी अन्य बहाने से लेना और उसे विभिन्न बहानों के तहत यथासंभव लंबे समय तक अपने पास रखना।

17. वायसराय और राजनीतिक एजेंटों द्वारा मूल्यवान उपहारों को स्वीकार करना और इस प्रकार चापलूसी और रिश्वत की भावनाओं को बढ़ावा देना।

18. कमरे में राज्यों और राजनीतिक विभाग से संबंधित सभी कार्य करना।

19. लोगों के शांतिपूर्ण विद्रोह को दबाने के लिए भी राज्य को अपने खर्च पर ब्रिटिश सेना प्रदान करना, लेकिन कभी भी जनता की मदद नहीं करना।

20. यह आदेश देना कि प्रत्येक उत्तराधिकार या गोद लेने को सरकार द्वारा मान्यता दी जानी चाहिए।

21.राज्यों के प्रभावशाली सार्वजनिक व्यक्तियों और जागीरदारों को ब्रिटिश

सरकार के संरक्षण में लेना।

22. किसी भी राजकुमार को ब्रिटिश सरकार की पूर्व स्वीकृति के बिना किसी भी यूरोपीय को नौकरी पर रखने की अनुमति नहीं देना।

23. राज्यों को उन अधिकारियों को उच्च वेतन देने के लिए बाध्य करना जो ब्रिटिश सरकार द्वारा समय-समय पर उन्हें दिए जाने वाले वेतन में देरी करते हैं।

24. आंतरिक प्रशासन से संबंधित मामलों में किसी शासक को अपनी राय देने का आदेश देना।

25. कोई ठोस सुधार न करना तथा राज्यों के प्रशासन में लोगों को कोई हिस्सा न देना,यहाँ तक कि जब किसी शासक को घोर कुशासन के आधार पर या अल्पमत आदि के कारण पदच्युत कर दिया जाता है, तब भी एक रीजेंसी स्थापित की जाती है जिसमें ब्रिटिश सरकार राज्य की बागडोर सीधे अपने हाथों में ले लेती है।

26. रेलवे, डाक, टेलीग्राफ और टेलीफोन को सीधे उनके क्षेत्रों में नियंत्रित करके राज्यों में ब्रिटिश अधिकार क्षेत्र लागू करना।

27. उनके स्वतंत्र सिक्के और मुद्रा को रोकना।

28. ब्रिटिश सरकार के प्रति वफादारी को सभी राजाओं के लिए अनिवार्य और आवश्यक बनाना।

29. शिक्षा आदि सहित सभी मामलों में वार्डशिप और मध्यस्थता ग्रहण करना।

इन सभी प्रथाओं और परंपराओं के निहितार्थ इतने स्पष्ट हैं कि उन्हें गलत नहीं समझा जा सकता। उन्होंने धीरे-धीरे न केवल सभी राज्यों पर समान रूप से लागू होने वाली एक सार्वभौमिक राजनीतिक संहिता बनाई और

स्थापित की है और इस प्रकार उन सभी को जागीरदार राज्यों के एक समूह में शामिल कर दिया है, बल्कि साम्राज्यवादी अधिकार और अधिकार क्षेत्र को उन क्षेत्रों के सबसे दूरदराज के कोनों तक विस्तारित करने में भी मदद की है, जिन्हें खुद वर्जित माना जाता था। लेकिन स्पष्टता के लिए, आइए ऊपर बताए गए कुछ बिंदुओं पर थोड़ा और विस्तार से चर्चा करें।

2, 3, 12, 13, 14, 17, 26, 27, 28 और 29 वें को शायद ही किसी स्पष्टीकरण की आवश्यकता है।

1, 5 और 7वें।

अब 1, 5 और 7वें से शुरू करते हैं, उनका स्पष्ट अर्थ है राज्यों के आर्थिक संसाधनों को कम करना, सेना का रखरखाव, जिसका उपयोग यदि आवश्यक हो तो उन्हीं राजकुमारों और लोगों के खिलाफ किया जाएगा जिनके खर्च पर इसका रखरखाव किया जाता है, और भारत के सैन्य बजट में दर्शाए गए से अधिक बलों का रखरखाव।

4 वें सुरक्षा उपाय का उद्देश्य भी स्पष्ट रूप से भारतीय राजकुमारों और उनके लोगों दोनों को कमजोर करना है।

5 वां और 7वां।

5वें और 7वें का मुख्य उद्देश्य रणनीतिक है। लेकिन वे ब्रिटिश निर्यात को बढ़ावा देने और किसी विशेष क्षेत्र में किसी विशेष वस्तु के निर्यात के लिए सुविधा प्रदान करने के लिए भी काम करते हैं और कभी-कभी ऐसा करने के लिए अभिप्रेत भी होते हैं।

8वाँ।

जहाँ तक 8वें का संबंध है, हमें नहीं लगता कि हमारे शब्द निम्नलिखित उद्धरणों से बेहतर तरीके से इसे स्पष्ट कर सकते हैं। उनमें से पहला डब्लू. एम. टॉरेंस एमपी का है जो कहता है :-

'लार्ड वेलेस्ली का उद्देश्य देशी सरकारों को अपनी सीमाओं के भीतर ब्रिटिश सैनिकों की टुकड़ियाँ रखने के लिए प्रेरित करना था...यह इतना स्पष्ट था कि इसे ग़लत नहीं समझा जा सकता था...यह अंग्रेजी हितों के प्रतिकूल योजनाओं के विकास और अंग्रेजी वंश के विकास के खिलाफ़

गारंटी थी। देशी दरबार में एक बुद्धिमान रेजिडेंट के निर्देशन में, अच्छी तरह से सशस्त्र, अच्छी तरह से वेतन पाने वाला और अच्छी तरह से नियंत्रित एक सघन बल अचानक होने वाले उपद्रव को विफ़ल कर देगा और गुप्त साज़िशों को लगातार जारी रखेगा और कम से कम किसी भी स्थिति में यह अपने किसी भी मित्र के लिए एक रैली स्थल और बचाव में सक्षम चौकी से तब तक बना रहेगा जब तक कि सहायता न आ जाए। दूसरा लार्ड मोरिया का है, जो कहता है। 'फिर हमने उनके दरबार में रेजिडेंट भेजे। राजदूतों के चरित्र में कार्य करने के बजाय उन्होंने तानाशाहों के कार्य ग्रहण किए, सभी निजी मामलों में हस्तक्षेप किया, उनके खिलाफ विद्रोहियों का मुकाबला किया और सत्ता के प्रयोग का सबसे दिखावटी प्रदर्शन किया।'

इसके अलावा, रेजीडेंसी गुप्त सेवा विभाग के उद्देश्य को पूरा करती है और शाही प्रचार के आधार के रूप में भी।

10वीं का उद्देश्य न केवल राज्यों के बाहरी जिलों में ब्रिटिश व्यापार के लिए नए बदलाव की तलाश करना है, बल्कि समय-समय पर जनता को सरकार की शक्ति और सर्वोच्चता की याद दिलाना भी है।

11वाँ. एक ओर तो विदेशियों को राज्यों के आर्थिक और अन्य संसाधनों के दोहन में खुली छूट देने के लिए और दूसरी ओर, भारत के लोगों को सामान्य रूप से और राज्यों के लोगों को इन सभी लाभों से वंचित करने के लिए इसके अलावा, यह भी ध्यान रखना चाहिए कि यद्यपि ये विशेष रियायतें और विशेषाधिकार सभी विदेशियों के लिए हैं, फिर भी, वास्तव में, विदेशियों के साथ अपने व्यवहार के संबंध में राजाओं पर लगाए गए प्रतिबंधों के कारण, केवल अंग्रेज ही इसका सबसे बड़ा हिस्सा भोगते हैं.

15वाँ.

लेकिन 15वाँ.केवल राज्यों के लोगों की शक्तियों को कमजोर करने के लिए है.

16वाँ

16वीं धारा न केवल जनता को उनके हितों को प्रभावित करने वाले मामलों के बारे में अँधेरा रखती है, बल्कि उन्हें ऐसे मामलों पर चर्चा करने और उन पर कोई विकल्प व्यक्त करने से भी वंचित करती है। दूसरी ओर,इसके

माध्यम से शासक, राजनीति में पिछड़े होने के कारण, राजनीतिक विभाग के किसी भी आदेश को आसानी से मानने के लिए मजबूर हो जाते हैं।

19वीं

धारा के परिणामस्वरूप, राजकुमार जनता पर किसी भी तरह की बर्बरता करने से नहीं हिचकिचाते।

20वीं

धारा का दूसरे शब्दों में अर्थ यह है कि सरकार के हाथों की कठपुतली बनकर काम करने वाले के अलावा कोई भी व्यक्ति राज्य की सरकार को सुरक्षित नहीं रख सकता।

21वीं

धारा राज्यों में शासन करने और उनसे लाभ उठाने के लिए सबसे नजदीकी साधन है।

22वीं

धारा एक ओर, राजाओं को सक्षम विदेशियों से मिलने वाली सर्वोत्तम सहायता और उपयोग से वंचित करती है, वहीं दूसरी ओर, यह अंग्रेजों के अलावा अन्य विदेशियों को संविधान द्वारा उन्हें दिए गए अतिरिक्त क्षेत्रीय अधिकारों का पूरा लाभ उठाने से वंचित करती है।

23वीं

धारा राज्यों में अप्रत्यक्ष रूप से छिपे हुए शासन के समान है।

24वीं

धारा राज्य के प्रशासन में राजकुमार की जो थोड़ी-बहुत रुचि और जिम्मेदारी की भावना है, उसे नष्ट कर देती है, जो उपर्युक्त सभी कठिनाइयों और बुराइयों के बावजूद भी उसके पास होती है और स्वतः ही उसे एक फिजूलखर्च और गैर-जिम्मेदार तानाशाह बना देती है।

25वीं

धारा राज्यों में छिपे हुए शासन के समान है, यद्यपि अप्रत्यक्ष रूप से। 25वाँ संशोधन यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट करता है कि ब्रिटिश सरकार न तो राज्यों में कोई सुधार चाहती है और न ही राज्यों के लोगों के बीच सार्वजनिक जीवन

और राय का विकास चाहती है। वह उन्हें साम्राज्यवादी उद्देश्यों के लिए कई सुरक्षित स्थानों की तरह रखना चाहती है।

इस नीति का स्वाभाविक रूप से वही परिणाम हुआ जिसकी अपेक्षा थी। विद्रोह के बाद हुए क्रूर दमन और जिस तरह से हजारों निर्दोष लोगों को घरों और गांवों में फाँसी दी गई, काटा गया और जला दिया गया, उसके कारण कम से कम भारत में कुछ समय तक कोई राजनीतिक हलचल नहीं देखी जा सकी।

जहाँ तक राज्यों के शासकों का प्रश्न है, वे अपनी पक्षपातपूर्ण दृष्टि के कारण तथाकथित विद्रोह से बहुत पहले ही देश की सामान्य राजनीति में रुचि खो चुके थे। नई परिस्थिति ने उन्हें अपने देश और राजनीति के बारे में सोचने की उस जिम्मेदारी से भी मुक्त कर दिया जो पिछली परिस्थिति ने उनमें छोड़ दी थी। अब उन्हें आंतरिक असंतोष के कारण अपने प्रभुत्व को खोने का कोई डर नहीं था। विलय की नीति, जिसने राजाओं के मन में चिंता पैदा कर दी थी, अब त्याग दी गई। बाहरी आक्रमण का भय भी समाप्त हो गया। दूसरी ओर, वे फैशन और विलासिता की गिरफ्त में आ गए, जिसे सरकार भी बढ़ावा दे रही थी। इसलिए, सजावट और विलासिता के लिए नई चीजों का शौक अब उनके दैनिक जीवन का मुख्य हिस्सा बन गया। बाकी सब चीजें खत्म हो जाएं, उनका एकमात्र उद्देश्य अब राजनीतिक एजेंट का पक्ष जीतना था। स्वाभाविक रूप से इन सभी चीजों ने खर्च में वृद्धि की, जिससे फिर से नए कर और मांगें बढ़ गईं। दूसरी ओर, विदेशी वस्तुओं के बाजार में आने और स्थानीय उद्योगों को प्रोत्साहन और समर्थन की कमी के कारण, लोग दिन-ब-दिन गरीब होते गए।

★

अध्याय–9
पुनः जागरण

आख़िरकार, भारत जो विद्रोह के बाद मृत और निष्क्रिय लग रहा था, 19वीं सदी के अंत में एक बार फिर जागृति के लक्षण दिखाने लगा। और यह वह जागृति थी जो धीरे-धीरे 1905 के प्रसिद्ध स्वदेशी आंदोलन में प्रकट हुई। इसमें कोई संदेह नहीं कि लगभग एक पीढ़ी तक गुलामी के इन मील के पत्थरों से गुजरने वाले लोग सभी राजनीतिक विचारों और कार्यों से अलग हो गए थे। गुलामी उनके लिए सहनीय हो गई थी, उनकी आँखें पश्चिमी फैशन और सभ्यता के झूठे आकर्षण से चकाचौंध हो गई थीं। इस प्रकार, आम लोगों ने अपने भाग्य से समझौता कर लिया था। लेकिन कम से कम इस देश का हिंदू समुदाय जन्मजात क्रांतिकारियों की दौड़ में था, इसे हमेशा के लिए अंधेरे में नहीं रखा जा सकता था। इसके लंबे अस्तित्व और निरंतरता के इतिहास में एक भी ऐसा काल नहीं है जिसमें कोई नया विचार या आंदोलन इसके अनुयायी पाने में विफल रहा हो। बल्कि, पिछली कुछ शताब्दियों में यह जोश अपनी सीमाओं को लांघकर इस हद तक बेतुका हो गया था कि यह किसी भी आस्था से जुड़ गया, चाहे वह वांछनीय हो या अन्यथा लेकिन यह तो संयोग की बात है। आंदोलन शक्तिशाली होता गया। इतना कि अधिकारी घबरा गए और निर्मम दमन द्वारा इसे दबाने की कोशिश करने लगे लेकिन यह जागृति, दंगा एक सतही बात थी। यह गहरी हो गई थी और देश की आत्मा को उसकी गहराई तक झकझोर गई थी।इसलिए निर्दयी दमन के बावजूद इसे देश के हर कोने से सहानुभूति मिली, यहाँ तक कि कुछ राजकुमारों ने भी इसका समर्थन करना बंद कर दिया।

और नौकरशाही इसे कैसे बर्दाश्त कर सकती थी? यह भी सतर्क हो गई। और सर। जॉन मैल्कम ने यह कहते हुए राज खोल दिया कि 'अब से उनका उद्देश्य राज्यों में अप्रत्यक्ष शासन और अधिकार क्षेत्र लागू करना होना चाहिए।' और यद्यपि सरकार ने बार-बार इसका खंडन किया, फिर भी वह अपने कार्यों में इसका यथासंभव पालन करती रही, जैसा कि कोई

भी चतुर किन्तु दुर्बल नौकरशाही कर सकती थी। उन्हें इस तरह से बिछाए गए जाल में फंसाने के उद्देश्य से, उसने जागीरदारों की भूमि हड़पने में उनकी सहायता करने के लिए लोगों को प्रोत्साहित किया और दूसरी ओर, उसने अपने अधिकारियों को बड़ी संख्या में उधार देना शुरू कर दिया। गोद लेने आदि से संबंधित मामलों में भी बहुत सावधानी और प्रभाव डाला गया। हस्तक्षेप करने वाले मोलोच ने किसी भी राजकुमार पर कठोर प्रहार किया, जिसने स्वतंत्र और स्वतंत्र सोच के लक्षण दिखाए। उन्हें राजनीतिक विभाग के हुक्मों को मानने के लिए मजबूर किया गया और केवल भगवान ही जानता है कि अगर इस बीच युद्ध नहीं छिड़ जाता, तो क्या होता, जिसने नौकरशाही को फिलहाल अपनी नीति को त्यागने के लिए मजबूर किया।

अब राजकुमारों से युद्ध में सहायता देने के लिए कहा गया। वे भी जनता के भ्रम में पल रहे थे। और झूठी आशाओं में पलकर वे अपनी धुन पर नाचने लगे। भूख से मर रहे लोगों से जबरन चंदा वसूला गया। जो लोग देने से इनकार करते थे, उन्हें कड़ी सज़ा दी जाती थी, उन्हें चिलचिलाती धूप में खड़ा किया जाता था और उनके सिर पर पत्थर रखे जाते थे। उनके रिश्तेदारों को परेशान किया जाता था। आम जनता ने कई बार गुहार लगाई, लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। जिस नौकरशाही के अधिकारी ब्रिटिश भारत के जिलों में धन और सैनिकों को इकट्ठा करने के लिए महिलाओं को परेशान करते थे और जो लोगों के दिलों में आतंक पैदा करने के लिए अपने अधिकारों और विशेषाधिकारों का दुरुपयोग करते थे, उनसे भारतीय राज्यों के लोगों की शिकायतों को सुनने की उम्मीद नहीं की जा सकती थी।*

हालांकि, आखिरकार युद्ध समाप्त हो गया और लोगों ने राहत की सांस ली। अब सभी उत्सुकता से वादे के मुताबिक इनाम की प्रतीक्षा कर रहे थे लेकिन इसके बजाय उन्हें जलियावाला त्रासदी मिली। लोग स्वाभाविक रूप से इससे बहुत उत्तेजित और परेशान हो गए। और इसने असहयोग आंदोलन के आगमन के लिए द्वार खोल दिया। मुसलमान आम

तौर पर कट्टरपंथियों की तरह वर्सेल्स की संधि और खिलाफत के गलत कामों के कारण भी बहुत परेशान थे और इसलिए इस अतिरिक्त असंतोष ने राजनीतिक अशांति की आग में घी का काम किया।

उस समय सरकार ने 1919 के सुधारों के ठंडे पानी को फेंक कर इस असंतोष को शांत करने की कोशिश की। लेकिन वह सफल नहीं हो सकी। लोगों में अब पर्याप्त राजनीतिक दूरदर्शिता और चेतना विकसित हो चुकी थी और इसलिए वे खेल को अच्छी तरह समझ सकते थे। वे जानते और मानते थे कि रौलेट एक्ट और पंजाब के गलत कामों के पहले से ही मौजूद होने के बावजूद दिखावटी सुधारों को स्वीकार करना राष्ट्र का अपमान होगा। भारतीय राज्यों के लोगों ने भी कुछ उम्मीदें रखी थीं, लेकिन जब उन्होंने देखा कि सुधार योजना में उनके लिए कोई जगह नहीं है, तो वे भी असंतुष्ट हो गए। उन्होंने भी अपने राज्यों में प्रचलित बेगार और अन्य बर्बरताओं के खिलाफ शांतिपूर्ण आंदोलन शुरू किया। यह कहना गलत नहीं होगा कि वे राज्यों द्वारा दिए गए सभी उकसावों के बावजूद आश्चर्यजनक रूप से शांतिपूर्ण बने रहे। उन्होंने कई वर्षों तक विभिन्न स्थानों पर निष्क्रिय प्रतिरोध जारी रखा। हजारों की संख्या में उन्होंने गिरफ्तारियाँ, कारावास और भारतीय राज्यों में आम अन्य अत्याचारों का सामना किया, और परिणामस्वरूप, उनमें से कई ने अपनी जान और संपत्ति खो दी। कई को तो अपनी जान गँवानी पड़ी।ब्रिटिश भारत में जनमत, समाचार-पत्र, संविधान और धनी तथा प्रभावशाली नेता थे, जो किसी भी आंदोलन का समर्थन करते थे। लेकिन भारतीय राज्यों में लोगों के पास इस तरह की कोई चीज नहीं थी, सिवाय लाचारी के।

इसीलिए ब्रिटिश सरकार ने बिना किसी स्वामित्व या अन्य बात पर विचार किए, राजाओं के कहने पर अपनी सेना भेज दी। और केवल शांतिपूर्ण आंदोलन के क्या परिणाम हुए, और कई स्थानों पर मामूली बहाने और झूठी खबरों पर हजारों किसानों को नष्ट कर दिया गया, उनके घर जला दिए गए, उनकी पत्नियों और बच्चों को असहाय भिखारियों की तरह भटकने के लिए छोड़ दिया गया और भारतीय राज्यों के लिए काम

करने वाले, जिन्होंने आंदोलन शुरू किया, उन्हें बोल्शेविक करार दिया गया और उन्हें दबाने के लिए सभी ब्रिटिश कानूनों और नियमों को हवा में उड़ा दिया गया।

लेकिन कुछ भी असहयोग आंदोलन के रोष और विकास को कम नहीं कर सका। यह दिन-प्रतिदिन बढ़ता गया और 1920-21 में यह इस चरम पर पहुंच गया कि सरकार भी अपने अस्तित्व के दिन गिनने लगी।

इससे पहले सरकार ने भारत के पिछले इतिहास से यही सीखा था कि हिन्दुओं में जाति व्यवस्था और मुसलमानों में धार्मिक कट्टरता भारतीय चरित्र के दो कमज़ोर बिंदु हैं। लगभग सभी साम्राज्यवादियों ने इन कमज़ोरियों को बढ़ावा दिया और उनका शोषण किया और यद्यपि भारतीय लोगों को अपने अस्तित्व के लंबे इतिहास में इन कमजोरियों के कारण बहुत अपमान और कठोर उत्पीड़न सहना पड़ा है, फिर भी वे इनसे छुटकारा नहीं पा सके हैं, सरकार भी अन्य लोगों की तरह भारतीय लोगों की इन कमजोरियों पर भरोसा करती रही और उनका शोषण करने में विश्वास करती रही।इसलिए इन भावनाओं को पोषित करने और बढ़ावा देने के लिए उसने न केवल हमारे इतिहास और साहित्य को बल्कि हमारी शिक्षा प्रणाली को भी विकृत कर दिया है। उदाहरण के लिए, हिंदुओं को हमेशा मुसलमानों को आक्रामक के रूप में देखना सिखाया गया और इसके विपरीत मुसलमानों को आक्रामक के रूप में देखा गया और इस प्रकार अलगाववादी प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया गया। राजस्थान सेवा संघ अजमेर द्वारा प्रकाशित 'दूसरी भील त्रासदी' देखें

संक्षेप में, उसने सोचा था कि हिंदुओं और मुसलमानों के बीच फूट डालो और साम्राज्य करो की नीति से वह लंबे समय तक भारत पर अपना नियंत्रण बनाए रखने में सक्षम होगा। लेकिन असहयोग आंदोलन ने ऐसे सभी पोषित भ्रमों को करारा झटका दिया। और परिणामस्वरूप उन्हें लगने लगा कि वह समय दूर नहीं जब हिंदू और मुसलमान एक सामान्य उद्देश्य के लिए एकजुट हो सकते हैं। इसलिए ब्रिटिश सरकार ने सोचना शुरू कर दिया कि यदि वे भारत और उसके अटूट संसाधनों को अपने निरंतर नियंत्रण में रखना चाहते हैं, तो उन्हें स्वतंत्रता के आंदोलन की बढ़ती लहर

को रोकने और रोकने के लिए एक और साधन बनाना होगा।

इसलिए देशी राज्यों के प्रति उनकी नीति में इतना आमूलचूल और सूक्ष्म परिवर्तन हुआ है। वह अपनी शक्ति और संसाधनों को अपने नियंत्रण में रखने के लिए अधीर हो गया है और इसलिए ये प्रस्ताव और इसलिए ये तैयारियाँ।

* पंजाब की कांग्रेस-जांच रिपोर्ट देखें।

अध्याय–10
वर्तमान परिस्थितियाँ

अब हमें उनकी वर्तमान परिस्थितियाँ जाननी होंगी। उनकी वर्तमान अंतरंग संरचना के बारे में इतना ही कहना पर्याप्त है कि उसमें कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ है, सिवाय इसके कि उसमें लगभग वे सभी तत्व समाप्त हो गए हैं जो सार्वजनिक जीवन और लोगों में पुरुषार्थ के विकास और रखरखाव में योगदान करते थे, राजाओं को अपनी प्रजा का समर्थन प्राप्त करने के लिए प्रेरित करते थे और जो राज्य की उपज को उनके क्षेत्रों में रखते थे।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि साम्राज्यवादी दृष्टिकोण से उनका आंतरिक निर्माण वैज्ञानिक आधार पर था। इस प्रणाली के माध्यम से उन्होंने लगभग सभी संस्थाओं और लोगों जैसे कि उपदेशक, कवि, भाट और कारीगर आदि को खरीद लिया था जो जनता के मन पर कोई प्रभाव डाल सकते थे। स्वाभाविक रूप से ये लोग हमेशा राजतंत्रीय व्यवस्था की महिमा और गरिमा को जनता के मन पर अंकित करते थे। उनके द्वारा निर्मित साहित्य और कलाएँ भी उन्हीं नापाक उद्देश्यों के लिए थीं और उनकी पूर्ति करती थीं। जागीरदारों ने भी राजतंत्रीय व्यवस्था की शक्ति और प्रभाव को बनाए रखने में कुछ योगदान दिया। निस्संदेह वे आज ऐसा कोई उद्देश्य पूरा नहीं करते। आज न तो उनका और न ही उनके कामों का जनता पर कोई प्रभाव है और न ही समय और परिस्थितियाँ उनके अनुकूल हैं।कुछ तो समय और लोगों की मानसिकता में आए बदलाव ने उन्हें निकम्मा बना दिया है और कुछ तो उनके अपने आचरण को ही उनके पतन के लिए दोषी ठहराया जा सकता है। बेशक अगर वे चाहें और समय की भावना के अनुसार खुद को ढालने के लिए कुछ करें तो वे अभी भी कुछ हद तक खुद को उपयोगी बना सकते हैं। पिछली सदी में उन्होंने लोगों के साथ मिलकर कई जगहों पर राजकुमारों की निरंकुशता का सफलतापूर्वक विरोध किया था।

लेकिन इसके लिए किसी एक पार्टी को दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं, राजकुमारों को जनता के प्रति सभी तरह की ज़िम्मेदारियों से मुक्त कर दिया गया था, इसलिए उन्हें अपनी जनता का विश्वास जीतने की जरूरत महसूस नहीं हुई। इसके अलावा, जिस तरह से उन्हें शिक्षित किया गया है, उसने उन्हें विलासी, कामुक और असहिष्णु बना दिया है। इसके अलावा अहस्तक्षेप की नीति ने राज्यों में जिम्मेदारी और हित के अंतिम निशान को भी खत्म कर दिया, अगर कोई था। क्योंकि, ब्रिटिश सरकार ने, दो या तीन अवसरों को छोड़कर, कुशासन और कुशासन को रोकने और सुधारने के उद्देश्य से कभी हस्तक्षेप नहीं किया। जब भी उसने हस्तक्षेप किया है, तो अपने उद्देश्य के अनुरूप ही किया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि राज्यों के लोग हमेशा असंतुष्ट रहते हैं और इसलिए वह हमेशा कुशासन या घोर कुशासन के दिखावटी बहाने पर हस्तक्षेप करती है। हमने जो ऊपर कहा है, उसे स्पष्ट करने के लिए कुछ हालिया घटनाओं का हवाला दिया जा सकता है।

पटियाला और अलवर के महाराजा अपने लोगों के बीच सबसे अलोकप्रिय हैं। वे अय्याश, भ्रष्ट और अत्याचारी हैं। वे राज्यों के राजस्व को बर्बाद करने में सबसे अधिक अनैतिक और फिजूलखर्च हैं। यदि एक ने 1925 में नीमूचाणा त्रासदी को अंजाम देकर कुख्याति प्राप्त की है, तो दूसरे ने सिखों के रूथल्स दमन और अपने पहाड़ी क्षेत्रों में महिलाओं की पवित्रता के साथ खिलवाड़ करके कुख्याति प्राप्त की है। फिर भी, चूँकि वे हमेशा राजनीतिक विभाग के इशारे पर नाचते हैं, इसलिए वे बेख़ौफ रह गए हैं, जबकि इंदौर और नाभा जैसे कम दोषी शासकों को पदच्युत कर दिया गया है। हालाँकि, अब हस्तक्षेप की नीति का दूसरा पहलू देखें। हैदराबाद के निजाम ने शुरू से ही राजकुमारों के सदन से खुद को अलग रखा और उदयपुर के महाराणा ने भी ऐसा ही किया। इसके अलावा, कई मामलों में उन्होंने राजनीतिक विभाग के आदेशों का आँख मूँदकर पालन नहीं किया और दूसरी तरफ, उनके प्रजाजन उनके अत्याचारों से परेशान थे। हैदराबाद के निजाम ने मुसलमानों का पक्ष लिया। उनकी उग्र सांप्रदायिकता निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट होगी।

हैदराबाद की आबादी एक करोड़ 24 लाख है, जिसमें मुसलमानों की

संख्या केवल 14 लाख है। फिर भी 1021 उच्च पदों में से केवल 175 हिंदुओं के हिस्से में आए। उर्दू, जो केवल मुसलमानों के बीच लोकप्रिय है, अनिवार्य है। अन्य भाषाओं के लिए सार्वजनिक स्वतंत्रता का द्वार लगभग बंद है। राज्य की अनुमति के बिना कोई निजी स्कूल नहीं खोला जा सकता। कोई भी समाचार-पत्र जो प्रशासन की प्रतिकूल आलोचना करने का साहस रखता है, उसे राज्य के क्षेत्र में प्रवेश करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है। परिणामस्वरूप, उदारवादी समाचार-पत्रों को छोड़कर लगभग सभी राष्ट्रवादी समाचार-पत्र आज प्रतिबन्धित हैं। इसके क्षेत्र में कोई राजनीतिक संगठन नहीं बन सकता और इसलिए राज्य के नागरिकों को प्रायः अपने सम्मेलन ब्रिटिश क्षेत्रों में करने पड़ते हैं।

उदयपुर का प्रशासन हमें 15वीं शताब्दी के सड़े-गले प्रशासन की याद दिलाता है। न तो संविधान है और न ही कोई कानून। यहाँ तक कि एक चपरासी का आदेश भी कानून है। राज्य की आधी जनता जंगली है और जनता को शिक्षा प्रदान करने के लिए भिक्षावृत्ति' पाप समझा जाता है। जब श्री महादेव हरिभाई देसाई एम.ए., एल.एल.बी., महात्मा गांधी के निजी सचिव, इस पुस्तक के लेखक द्वारा संचालित बिजोलिया के किसानों के आन्दोलन की जाँच करने बिजोलिया गए और जब उन्होंने अधिकारियों से शिक्षा की स्थिति के बारे में पूछा तो उन्हें बताया गया कि 'देखिए, ये लोग अशिक्षित रहते हुए इतना आंदोलन कर रहे हैं, अगर ये शिक्षित हो जाएंगे तो हमें चैन की नींद सोने नहीं देंगे।' हालांकि, ये कोई अलग उदाहरण नहीं हैं। आज सौ में से निन्यानबे राज्यों में यही बर्बर स्थिति है। केवल चार या पांच राज्य ऐसे हैं जो सुधरे हुए और प्रगतिशील हैं। लेकिन हमने इनका उल्लेख केवल हस्तक्षेप की नीति की वास्तविक प्रकृति को दिखाने के लिए किया है। इन राज्यों में हस्तक्षेप उनमें व्याप्त कुशासन के दिखावटी बहाने पर किया गया था। फिर भी राज्यों के लोगों को कुछ नहीं मिला। सरकार को जो चाहिए था वो मिल गया और लोगों की शिकायतें हमेशा की तरह अनसुलझी रह गईं। संक्षेप में, हम जो कहना चाहते हैं वो यह है कि सरकार हमेशा से ही हस्तक्षेप की नीति को लेकर अशिक्षित रही है। लोगों के अधिकारों की रक्षा के नाम पर हस्तक्षेप करने के अपने अधिकार को उचित

ठहराने का प्रयास किया, लेकिन इसने कभी भी अपने कर्तव्य का निर्वहन ठीक से नहीं किया, दूसरी ओर, जब भी अवसर आया, तो उन्होंने हमेशा राजाओं को उनके क्रूर दमन में सहायता की। अब, न तो यह हो सकता है कि ब्रिटिश अधिकारी राज्यों में कुछ भी नहीं कर सकते। वास्तव में, वे ही अप्रत्यक्ष रूप से उन पर शासन करते हैं। लेकिन यदि हम गहराई में न भी जाएं, तो भी हम यह स्पष्ट रूप से देख सकते हैं कि वास्तव में ब्रिटिश अधिकारी ही राज्यों पर शासन करते हैं। यहां कुछ उदाहरण दिए गए हैं, जो उनके महान प्रभाव को दर्शाते हैं।

(1) असहयोग के दिनों में सरकार ने राज्यों को एक गोपनीय परिपत्र भेजकर सूचित किया कि असहयोगियों के स्वयंसेवी दल, जो निष्क्रिय प्रतिरोध का सहारा ले रहे थे को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया है। यह जयपुर राज्य के लिए सामाजिक और शैक्षिक सेवाओं के लिए बनाए गए सभी स्वयंसेवी संगठनों को भंग करने के लिए पर्याप्त था।

(2) उदयपुर के जेता भोई की पत्नी परतापी को कई महीनों तक रेजीडेंसी कोठी में जबरन हिरासत में रखा गया। फिर भी उसके पति द्वारा कई बार प्रार्थना करने के बावजूद उसे वहाँ उपस्थित होने से मना कर दिया गया। लेकिन अंततः उसे मेवाड़ दौरे के दौरान बासी गाँव में रेजिडेंट के शिविर में पाया गया और राजूब नामक उसके बटलर के डेरे में उसे गिरफ़्तार कर लिया गया लेकिन इस मामले के केवल कागजात ही फौजदारी यानी उदयपुर के सिटी मजिस्ट्रेट की अदालत में भेजे गए, न कि आरोपी को। तब अदालत ने कागज़ात के साथ आरोपी राजूब की भी मांग की, जिसके बारे में पुलिस ने जवाब में लिखा। आरोपी को मुकदमे के लिए भेजने के लिए रेजीडेंसी वकील से किए गए हमारे अनुरोध के उत्तर में हमें सूचित किया गया कि रेजीडेंसी साहब ने कहा है कि उन्होंने इस मामले पर दीवान से बात की है, जो तदनुसार इस मामले को व्यक्तिगत रूप से लेंगे। इसलिए कागज़ात आरोपी के बिना भेजे गए हैं। अंततः, दीवान और पुलिस अधिकारी ने बेचारे जेटा पर दबाव डाला और उसे 200 रुपये की राशि के लिए राजूब को अपनी पत्नी सौंपनी पड़ी और मामले में समझौता करना पड़ा। महिला

का ईसाई धर्म में धर्मांतरण कर दिया गया।*

संक्षेप में, श्री जोसेफ़ चौली* के शब्दों में 'उनके दरबार में रहने वाले राजनीतिक अधिकारी वास्तव में (मैं यहाँ देशी राय को पुनरू प्रस्तुत करता हूँ जिसमें सत्य है) उनके स्वामी हैं। यह निजाम के मामले में सच नहीं हो सकता है, जिसके ग्यारह मिलियन लोग हैं और शायद मैसूर राज्य में, जिसके पांच मिलियन लोग हैं, इस स्तर के शासकों का विरोध असुविधाजनक हो सकता है और परिणामस्वरूप वे राजनीतिक तानाशाह के कष्टप्रद नियंत्रण से बच सकते हैं। लेकिन अन्यत्र राजनीतिक अधिकारी का रवैया जबकि सामान्य रूप से आदरपूर्ण (हालांकि कभी-कभी उसमें भी कमी होती है) एक सेवक का रवैया होता है जो अपने नाममात्र के स्वामी को निर्देश देता है, अभिमानी, विनम्र, ढीठ और विडंबनापूर्ण। और पर्यवेक्षकों का क्या कहना है कि मैं जिन राजनीतिक अधिकारियों को उद्धृत कर रहा हूँ। वे जासूसों को छोड़कर हैं, जिनके शब्दों पर अंग्रेज सभी बाहरी इनकार के बावजूद विश्वास करेंगे। एक बार जब वे किसी मामले पर फैसला सुना देते हैं, तो मुख्य व्यक्ति इसके खिलाफ अपील कैसे कर सकता है, वाइसराय को पत्र लिखने या सरकार को शिकायत करने की कठिनाई और असाधारण विधि के अलावा और राज्य के लोग धोखा नहीं खाते हैं।वे जानते हैं कि उनके शासक इस प्रकार स्वामियों के अधीन हैं और उनका रवैया इसी से रंग लेता है। लेकिन कहानी यहीं समाप्त नहीं होती। सच तो यह है कि सरकार न केवल राज्यों में कुशासन और कुशासन को बढ़ावा देती है, बल्कि राज्यों में सुधारों को हतोत्साहित करके इसे प्रोत्साहित और बनाए रखती है। यह निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट हो जाएगा।

भारतीय राज्यों में दो सबसे भयानक और बर्बर प्रथाएँ हैं बेगार और गुलामी। जहाँ तक बेगार का सवाल है, यह अवैतनिक और जबरन मजदूरी की प्रणाली है। यह किसी न किसी रूप में सभी भारतीय राज्यों में प्रचलित है। 'कुछ व्यक्तियों या उच्च पद और गरिमा वाले समुदायों को छोड़कर सभी को भ्रमणशील अधिकारियों के आदेश पर बेगार करनी पड़ती है। इस प्रणाली के कारण कई परिवार बर्बाद हो गए हैं। यहाँ तक कि कुछ लोगों को इसके लिए अपनी जान भी देनी पड़ी। श्री एंड्रयूज के दौरे के लिए ज़मीन

तैयार करने के लिए जाँच के दौरान जिन्होंने 1920 में बेगार के ख़िलाफ़ आंदोलन शुरू किया था, ऐसे सैकड़ों मामले सामने आए, जिनमें पीड़ितों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा इस पुस्तक के लेखक ने कहा कि वर्तमान व्यवस्था पीड़ित और पीड़ित दोनों को ही हतोत्साहित करती है। एक में स्वार्थ और अत्याचार की क्रूर प्रवृत्ति पैदा होती है, जबकि दूसरे में राज्य के प्रति कायरता और घृणा बढ़ती है लेकिन पाठक यह जानकर आश्चर्यचकित होंगे कि यह क्रूर और अपमानजनक संस्था जो मानवता के लिए अभिशाप है और जो लोगों को दासता के स्तर तक शिक्षित करती है, ब्रिटिश सरकार द्वारा भी निंदा की जाती है। यहाँ हम उदाहरण के तौर पर इसका केवल एक उदाहरण देना चाहेंगे।

1923 में कोटा दरबार ने बेगार को समाप्त कर दिया और कोटा में गवर्नर-जनरल के एजेंट का स्वागत करते हुए दिए गए अपने भाषण में इसका संकेत दिया लेकिन जवाब में ए जी जी ने कहा, बेगार अपने आप में अभिशाप या गुलामी का एक रूप नहीं है। यह ऐसी संस्था नहीं है जो लोगों को दासता के स्तर तक कम कर देती है। इसके विपरीत यह केवल एक सबूत है कि राजकुमार और उसके रईसों और उनके राजाओं के बीच सही तरह के संबंध मौजूद हैं। यह सहजता और तत्परता से की गई स्नेह की सेवा है तथा इसे दया और परोपकार के साथ स्वीकार किया जाता है। ब्रिटिश भारत में भी बेगार प्रशासन की दुष्टता का सबूत नहीं है। पुराने दिनों में चारा और ईंधन इत्यादि स्नेह और आतिथ्य और कृतज्ञता और संकट के समय सुरक्षा और सहायता के रूप में भ्रमणशील अधिकारियों को स्वतंत्र रूप से दिए जाते थे। इसमें कोई संदेह नहीं है कि दुरुपयोग आए हैं, और प्रशासन की प्रणाली व्यक्तिगत कारक पर कम निर्भर हो गई है और संस्था को कम करना पड़ा है। लेकिन मुझे खेद है ब्रिटिश भारत में भी इसे पूरी तरह से समाप्त कर दिया गया। और मुझे उम्मीद है कि यह राज्यों में लंबे समय तक जीवित रहेगी।

अब गुलामी को बढ़ावा देने के संबंध में निम्नलिखित उद्धरण अपने आप में बोलेंगे। जब 1926 में राष्ट्र संघ की छठी समिति ने अंतर्राष्ट्रीय दास प्रथा सम्मेलन पर चर्चा की, तो ब्रिटिश प्रतिनिधि ने कहा, 'भारत

सरकार इस बात से संतुष्ट थी कि भारतीय राज्यों में सामान्य अर्थों में दास प्रथा नहीं थी, लेकिन वे राज्यों के शासकों से आग्रह करने के लिए तैयार थे कि वे जहाँ आवश्यक हो, सुधार लागू करें। हालाँकि वे यह नहीं मानते थे कि शासक राजाओं के आंतरिक प्रशासन में हस्तक्षेप उचित है, लेकिन वे राज्य शासकों को उपयुक्त सिफारिशें करने में विफल नहीं होंगे।'

अब भारतीय राज्यों में सामान्य अर्थों में दास प्रथा है या नहीं, यह अगले अध्यायों में दिखाया जाएगा। लेकिन ब्रिटिश सरकार दास प्रथा को हतोत्साहित करने की अपनी बड़ी-बड़ी बातों के बावजूद इसे कैसे प्रोत्साहित करती है, यह बाद में आने वाले तथ्यों से स्पष्ट होगा। यह भी सर्वविदित है कि कोई भी राज्य सरकार की मध्यस्थता के बिना दूसरे राज्य के साथ बातचीत नहीं कर सकता। इस प्रथा के अनुसार, लीग समिति में उपरोक्त कथन के लंबे समय बाद, सरकार ने कई राज्यों में प्रत्यर्पण कानून बनाए। दास प्रथा से संबंधित बहुत से कानूनों में से एक विशिष्ट प्रत्यर्पण कानून कहता है :-

'कृषि मजदूर किसान, चरवाहे और चरवाहे, तथा राज्य और उनके कुलीनों के दासों को तब तक दूसरे राज्य में जाने की अनुमति नहीं दी जाएगी, जब तक कि वे अपने स्वामियों के साथ समझौता न कर लें। एक नियम के रूप में, उन्हें एक राज्य से दूसरे राज्य में जाने से पहले नाजिम (जिला मजिस्ट्रेट) या अपने स्वामियों से परमिट प्राप्त करना होगा। जो किसान, कृषि मज़दूर चरवाहे, चरवाहे और दास ऐसे परमिट प्राप्त करने में विफल रहे, उन्हें क्रमशः जिला मजिस्ट्रेट और संबंधित पुलिस अधीक्षक को मांग सौंपनी होगी।**

इन तथ्यों के प्रकाश में, पाठक बहुत अच्छी तरह से अनुमान लगा सकते हैं कि ब्रिटिश सरकार कुशासन और दास प्रथा को बनाए रखना चाहती है या ख़त्म करना चाहती है। इसी तरह, राजनीतिक एजेंटों के भाषण और भारतीय राज्यों में वायसराय द्वारा राज्यों के दौरे के अवसर पर लिखे गए पत्र भी ध्यान देने योग्य हैं। उनमें यहाँ-वहाँ कुछ शब्द मिल सकते हैं राज्य में अच्छे प्रशासन के बारे में तो कोई बात नहीं कही गई है, लेकिन प्रशासन में राज्य के लोगों के प्रतिनिधित्व और हिस्सेदारी के बारे में एक शब्द भी नहीं

लिखा गया है।

सच तो यह है कि राजा-महाराजा सरकार के प्रतिनिधि या सामंती सरदारों के अलावा और कुछ नहीं हैं और अगर सरकार उनकी स्थिति और पद में कोई बदलाव चाहती है तो वह इसलिए क्योंकि उसका स्वार्थ इसकी मांग करता है।

* उदयपुर दरबार द्वारा अपने मामलों की सुनवाई के लिए नियुक्त विशेष न्यायाधिकरण के समक्ष अपने बयान में पथिक द्वारा उद्धृत। उदयपुर राज्य के न्यायिक रिकार्ड से।

* ब्रिटिश भारत की समस्याएँ एमजे चौली द्वारा। पृ. 257.

** कोटा राज्य द्वारा अधिनियमित प्रत्यर्पण कानून से एक उद्धरण।

अध्याय–11
वर्तमान परिस्थितियाँ
आंतरिक प्रशासन

पहले से उल्लेखित परिस्थितियों के परिणामस्वरूप, राज्यों का आंतरिक प्रशासन स्वाभाविक रूप से बहुत बिगड़ गया है। कोई भी समझ सकता है कि ब्रिटिश सरकार देशी राज्यों में शासन-व्यवस्था और कुशासन में क्यों मिली हुई है। लेकिन उन्हें कोई शिक्षा नहीं दी जाती। व्यापार, कला, शिल्प और कुटीर उद्योग आदि अप्रत्यक्ष तरीकों से नष्ट कर दिए गए हैं। लोग इतनी गरीबी में आ गए हैं कि कई राज्यों में वे एक टुकड़े के लिए भी कोई भी अपराध कर सकते हैं। गाँव दर गाँव ऐसे लोगों से आबाद हैं जो किसी व्यक्ति के फटे कपड़े छीनने के लिए उसकी हत्या करने में भी संकोच नहीं करते। उनमें से कई तो घुमंतू अपराधी जनजातियों के लिए सुरक्षित ठिकाने हैं। अधिकांश राज्यों में रिश्वतखोरी आम बात है। 30 रुपये प्रति माह पाने वाला व्यक्ति आमतौर पर 300 रुपये खर्च करता है। इसके अलावा, अधिकांश राज्य पहाड़ी और सामरिक ज़िलों में स्थित हैं। ऐसी परिस्थितियों में लोगों को ऐसी परिस्थितियों में रखकर सरकार किसी भी समय सेना के लिए बहुत से लोगों को भर्ती कर सकती है। इस प्रकार एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि यह अंग्रेजों का स्वार्थ है जिसके लिए भारत के एक तिहाई भाग को ऐसी परिस्थितियों में रखा गया है लेकिन राज्यों को इससे कुछ भी लाभ नहीं है और फिर भी अपनी अज्ञानता के कारण उन्होंने हमेशा ब्रिटिश सरकार के साथ इसके कार्यान्वयन में आँख मूंदकर सहयोग किया है।

परिणाम यह हुआ है कि परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण और उनके अपने संरक्षित राज्य जागीरदारों की श्रेणी में आ जाने के कारण, उनके पास विलासिता में लिप्त होने के अलावा कोई काम नहीं बचा है। जागीरदार भी उन्हीं परिस्थितियों का शिकार होकर भटक गए और अपने रहन-सहन, खान-पान, महल बनवाने, साज-सज्जा और अन्य चीजों में राजकुमारों की नकल करने लगे। स्वाभाविक रूप से इससे खर्च बहुत बढ़ गया और परिणामस्वरूप कर भी अधिक हो गया। और जब इससे उनकी प्रजा की पूरी

तरह से पूर्ति नहीं हुई, तो जंगलों को अपने अधीन कर लिया गया, जिसके परिणामस्वरूप किसानों को बहुत असुविधा हुई और कई मवेशियों के भरण-पोषण में कठिनाई हुई। पशुओं की संख्या में कमी के कारण खाद की मात्रा में भी कमी आई, जिसका सीधा असर फ़सलों पर पड़ा। दूसरी ओर, मवेशियों और जंगलों पर आधारित कुटीर उद्योग और अन्य व्यवसाय नष्ट हो गए क्योंकि उन्हें संरक्षण नहीं मिला और लोगों को अपनी ज़रूरतें विदेशी वस्तुओं से पूरी करनी पड़ीं, जिससे लाखों कारीगर और मज़दूर बेरोजगार हो गए। पूर्व में कुछ समय तक लोग विदेशी दवाओं से दूर रहे लेकिन बाद में उन पर अस्पताल थोप दिए गए। इस तरह एक ओर करों का बोझ बढ़ता गया और दूसरी ओर फ़सलें और उद्योग घटते गए और ब्रिटिश व्यापार फलता-फूलता रहा। स्वदेशी* आंदोलन को हमेशा दबाया जाता रहा। कुशल प्रशासन के अभाव में चोरों और लुटेरों की संख्या भी बढ़ती गई। इसके अलावा, कम वेतन और स्वस्थ वातावरण के अभाव के कारण सभी प्रकार के राज्य अधिकारी और कर्मचारी रिश्वतखोरी का सहारा लेते हैं, जिसके परिणामस्वरूप आज राज्यों के अधिकांश लोग चोरी या डकैती के मामले की रिपोर्ट पुलिस में नहीं करते हैं, बल्कि इसके बजाय उन्हें डाकुओं के नेताओं के पास जाकर उन्हें उपहार देकर अपनी खोई हुई संपत्ति वापस पाने के लिए मजबूर होना पड़ता है। इन सबके अलावा, मध्यकालीन युग की बर्बर प्रथाएँ और दंड आज भी प्रचलन में हैं यहाँ उनकी विचित्र और अमानवीय प्रथाओं के कुछ विशिष्ट उदाहरण दिए गए हैं।

1. अभियुक्तों को अभी भी यातनाएँ दी जाती हैं, जैसे, उन्हें काठ में डाल दिया जाता है, उनके सिर या पेट पर भारी बोझ रखकर धूप में खड़ा किया जाता है उन्हें खूंटे, काँटों आदि पर बैठने के लिए मजबूर किया जाता है। उन्हें सामान्य चमड़े के गार्ड के बिना हर दिन कई मील तक बेड़ियों में जकड़कर चलने के लिए मजबूर किया जाता है।
2. लोगों को किले और महलों के सामने से गुज़रते समय अपने वाहनों से उतरना पड़ता है।
3. किले, दरबार और महल के सामने से गुज़रते समय लोगों को छाता का उपयोग करने की मनाही है।

4. राजपरिवार के सदस्यों के अलावा कोई भी व्यक्ति पैरों में सोना नहीं पहन सकता।
5. बिना सिर ढके किलों, दरबारों और महलों में प्रवेश वर्जित है।
6. युवा राजकुमारों और राजकुमारियों के खर्च को बनाए रखने के लिए किसानों से अतिरिक्त कर वसूला जाता है।
7. राजपरिवार के सदस्यों की शादी का जश्न मनाने के लिए लोगों को अतिरिक्त कर देना पड़ता है।
8. लोग बिना किसी दंड के अपना धर्म नहीं बदल सकते।
9. गांवों के लोगों को अपने गांवों को खाली करने के लिए मजबूर किया जाता है ताकि उन्हें (गांवों को) शिकार के उद्देश्य से संरक्षित क्षेत्रों में बदला जा सके।

अमानवीय प्रथाओं के बारे में हमने जो पहले कहा है, उसके समर्थन में कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। लेकिन हम यहाँ कुछ बर्बर प्रयोगों के समर्थन में केवल दो या तीन सकारात्मक तथ्यों का हवाला देकर संतुष्ट हो जाएंगे। सबसे पहले, यातनाओं के संबंध में, राज्य के अधिकारियों के खिलाफ लाए गए कई कानूनी मुकदमों से कई उदाहरण उद्धृत किए जा सकते हैं। लेकिन यहाँ हम केवल एक तथ्य का उल्लेख करेंगे, वह यह कि उदयपुर राज्य के गिरही महकमा (विभाग) ने 1980 के दशक में राज्य के अधिकारियों के खिलाफ़ दर्ज कराई गई यातनाओं के लिए एक विशेष अदालत का गठन किया था। इसे हाल ही में समाप्त कर दिया गया है? इस आधार पर कि यह एक नियमित मशीनरी या ऐसी यातनाएँ साबित हुई हैं।

जहाँ तक किलों आदि में बिना टोपी के प्रवेश पर प्रतिबन्ध और इसी तरह की प्रथाओं का सवाल है, हम अपने पाठकों का ध्यान बीकानेर में घटी एक घटना की ओर आकर्षित करना चाहते हैं, जो सबसे प्रगतिशील राज्यों में से एक होने का दावा करता है-हालाँकि वास्तव में यह सबसे प्रतिक्रियावादी है-और जिसका शासक जिनेवा में भारतीय राजाओं का प्रतिनिधित्व करने के लिए चुना गया था। लेखक, बीकानेर के किले को देखने का इरादा रखते हुए, बताया गया कि वह किले में तभी प्रवेश कर सकता है जब वह रंगा हुआ पगड़ी सिर पर पहनेगा और राज्य के नियमों के अनुसार

अपने देशी जूते उतार देगा।

धर्मांतरण के संबंध में, हम अपने पाठकों का ध्यान संहिता की धारा 300, 'तिराअत शाहजहानी' (भोपाल दंड संहिता) की ओर आकर्षित करना चाहते हैं, जिसमें कहा गया है कि 'यदि कोई व्यक्ति इस्लाम धर्म अपनाने के बाद धर्मत्यागी हो जाता है, तो उसे तीन वर्ष तक के कारावास या जुर्माने या दोनों से दंडित किया जा सकता है।' बेदखली के संबंध में, हम भरतपुर के महाराजा के विशिष्ट आचरण का उदाहरण देते हैं 1924 में बराटपुर जिले के छह गांवों के निवासियों को शिकार के उद्देश्य से संरक्षित क्षेत्रों में परिवर्तित करने के उद्देश्य से उन गांवों को खाली करने का आदेश दिया गया था। निवासियों ने महाराजा से अनुरोध किया कि वे अपने आदेश को बरसात के मौसम तक स्थगित कर दें। यहां तक कि इस वैध अनुरोध तक भी नहीं पहुंचा गया और उन्हें तुरंत गांवों को खाली करने का आदेश दिया गया। जिन्होंने ऐसा करने से इनकार कर दिया, उन पर राज्य के खिलाफ राजद्रोह का आरोप लगाया गया और उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया। हाथियों और उनके जले हुए छप्परों के माध्यम से उनकी झोपड़ियों को जमीन पर गिरा दिया गया।

* अपने देश में निर्मित वस्तुओं का उपयोग करने के लिए।

* बिजोलिया पत्र देखें।

अध्याय–12
वर्तमान परिस्थितियाँ
विभाग

सामान्यतः राज्यों में निम्नलिखित विभाग होते हैं, अर्थात :-

(1) पुलिस
(2) न्यायपालिका
(3) राजस्व
(4) उत्पाद शुल्क
(5) सीमा शुल्क
(6) परिवहन
(7) सैन्य
(8) वन
(9) शिक्षा
(10) आरक्षित वन
(11) महल

कुछ राज्यों को छोड़कर अन्य राज्यों में न तो प्रतियोगी परीक्षाएँ होती हैं और न ही सेवाओं की भर्ती के लिए निश्चित योग्यताएँ होती हैं। न ही राज्यों के कर्मचारियों के लिए कोई वर्दी होती है। इसका परिणाम यह होता है कि कोई भी 'सफेद पोश' (फैशनेबल बाकाँ) गाँवों के लोगों से बेगार और व्यापारियों से कम दरों पर राशन ले सकता है। कुछ जगहों पर तो वह पैसे ऐंठने में भी सफल हो जाता है। राज्यों में भी जागीरदारों के पास आमतौर पर कार्यकारी और न्यायिक दोनों शक्तियाँ होती हैं, न्यायपालिका आम तौर पर कार्यकारी से अलग नहीं होती। कई राज्यों में तो एक कदम और आगे बढ़कर शासक खुद भी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश होता है। इसका परिणाम यह होता है कि लोगों को शुद्ध न्याय नहीं मिल पाता और अक्सर न्यायिक शक्तियों का दुरुपयोग कुछ नीच कार्यकारी उद्देश्यों को पूरा करने के लिए किया जाता है।

प्रतिनिधि संस्थाएँ

हाल ही में कुछ राज्यों में बाहरी जनता या बटलर समिति जैसी संस्थाओं को

धोखा देने के लिए प्रतिनिधि सभाएँ या निकाय भी शुरू किए गए हैं। लेकिन उनमें प्रतिनिधि चरित्र की आत्मा तक नहीं है। वे केवल दिखावा हैं। क्योंकि, सबसे पहले, जैसा कि पहले ही दर्शाया जा चुका है, ऐसे माहौल में कोई भी कल्पना भी नहीं कर सकता कि कोई सच्चा प्रतिनिधि व्यक्ति उनमें शामिल हो सकता है, भले ही प्रतिनिधि सभाएँ बनाने के लिए कुछ प्रावधान और सुविधाएँ हों। लेकिन आज ऐसी संस्थाओं के लिए कोई सुविधा नहीं है। इसलिए, आम तौर पर वे केवल ऐसे सदस्यों से बनी होती हैं जो सरकार के पक्ष में होते हैं। इसके अलावा वे केवल याचिका दायर करने वाली संस्थाएँ हैं, जिनकी सीमित क्षेत्र में भी कोई जिम्मेदारी नहीं है, क्योंकि वीटो करने की शक्ति कार्यकारी के पास होती है जो विधानसभा या परिषद के प्रति बिल्कुल भी उत्तरदायी नहीं होती। सबसे अच्छा और सर्वांगीण मान्यता प्राप्त उदाहरण देने के लिए, आइए मैसूर के उदाहरण को लें। इस राज्य की भारत में अपने प्रगतिशील प्रशासन के लिए सर्वत्र प्रशंसा की जाती है। लेकिन वास्तव में यह क्या है, इसका अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि राज्य के कुल राजस्व का एक-चौथाई हिस्सा मादक पदार्थों की बिक्री से प्राप्त होता है। अन्य बातों के लिए हम मैसूर विधानमंडल के एक प्रमुख सदस्य की राय को नीचे उद्धृत करते हैं। वे लिखते हैं :-

'शासक प्रशासन का मुखिया होता है और उसकी इच्छा ही कानून होती है तथा प्रशासन की सभी शाखाओं में सर्वोच्च होती है। वह सभी अधिकारियों को नियुक्त करता है और हटाता है, यहाँ तक कि सर्वोच्च न्यायाधिकरण के न्यायाधीश भी उसके द्वारा मनोनीत होते हैं और यद्यपि न्याय के स्वाभाविक क्रम में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है, फिर भी कार्यकारी जोड़-तोड़ द्वारा निर्णयों को प्रभावित करना काफी संभव है। प्रतिनिधि सभा यद्यपि एक विशुद्ध लोकप्रिय निकाय है, जिसके पीछे लगभग 60 वर्षों का विशिष्ट रिकार्ड है, फिर भी वह एक याचिका दायर करने वाला निकाय है, जिसके पास सबसे सीमित प्रकार की भी ज़िम्मेदारी की कोई शक्ति नहीं है। विधान परिषद के पास कोई निर्वाचित बहुमत नहीं है और इसके प्रस्ताव और सिफ़ारिशें विशुद्ध रूप से सलाहकार प्रकृति की होती हैं और उन्हें वीटो करने की शक्ति कार्यपालिका में निहित होती है। स्वयं कार्यपालिका परिषद

के प्रति किसी भी प्रकार की ज़िम्मेदारी नहीं रखती है।
प्रेस, संगठन या भाषण की कोई स्वतंत्रता नहीं है, तथा किसी को भी निर्वासन, नज़रबंदी और संपत्ति जब्त करने का काम कार्यपालिका द्वारा न्यायिक जांच के बिना ही किया जा सकता है।

नागरिक प्रशासन भारी है और मोटे वेतनभोगी अधिकारियों और रिजर्व कर्मियों की एक सेना है जो किए जाने वाले काम के अनुपात से पूरी तरह बाहर है, जो अधिक बोझ वाले रैयतों की कीमत पर बनाए रखा जा रहा है।जिसे लोक सेवा कहा जाता है। उसके निचले स्तर के लोगों को कम वेतन दिया जाता है और अधिकांश लोगों को जीवनयापन के लिए पर्याप्त वेतन नहीं मिलता है। परिणामस्वरूप, उनके बीच भ्रष्टाचार, अयोग्यता और असंतोष बढ़ रहा है और प्रशासन के मुख्य भाग पर इन कमज़ोर अंगों के अस्तित्व के विनाशकारी प्रभाव की कल्पना करने के लिए बहुत अधिक कल्पना की आवश्यकता नहीं है।

हम दो और ऐसी परिषदों और एक स्थानीय स्वशासन संस्था की स्थिति भी बताना चाहेंगे, जो उन शासकों द्वारा शुरू की गई थी, जिन्होंने खुद को बहुत सभ्य, प्रबुद्ध और प्रगतिशील बताया था, और जो राजाओं के प्रवक्ता होने का दावा करते थे।

उनमें से एक है जामनगर के जाम साहब द्वारा स्थापित परिषद, जिन्होंने कुछ इच्छुक व्यक्तियों को इकट्ठा करके एक परिषद बनाई, जैसे कि किसी जादू की छड़ी से और इसे अलवर के महाराजा द्वारा खुलवाया गया, जो कि जाम साहब की तरह ही एक पाखंडी के रूप में जाने जाते हैं। लेकिन तब से इसकी कभी बैठक नहीं हुई।

दूसरी विशिष्ट परिषद भावनगर की है। इसमें राज्य द्वारा मनोनीत सदस्य होते हैं, और प्रत्येक सदस्य को केवल पाँच प्रश्न पूछने की अनुमति होती है और वह भी अधिकारियों की पूर्व अनुमति के साथ। फिर भी, यह सब एक प्रतिनिधि सभा के नाम से चलता है।

तीसरी एक विशिष्ट स्थानीय स्वशासन संस्था का उदाहरण है। यह बीकानेर जैसे तथाकथित प्रगतिशील और प्रबुद्ध राज्य की है, जिसके शासक ने एक बार भारतीय राजाओं का भी प्रतिनिधित्व किया था।राष्ट्र संघ उनके

राज्य में एक नगरपालिका है, लेकिन लोग उसके चुनावों में कोई रुचि नहीं लेते। जब इस पुस्तक के लेखक ने इस उदासीनता का कारण पूछा तो अधिकारियों ने बताया कि पिछड़े होने के कारण लोग ऐसे कार्यों में रुचि नहीं लेते। लेकिन जब जनता ने पता लगाया तो पता चला कि चुनाव के संबंध में उनकी ओर से जो भी आंदोलन किया जाता है, उसका दमन किया जाता है। एक बार लोगों को सिर्फ इसलिए जेलों में ठूंस दिया गया था क्योंकि उन्होंने स्वर्गीय लोकमात्य तिलक की पुण्यतिथि मनाई थी। इसके अलावा, नियम ऐसे हैं कि सदस्य का चुनाव तभी हो सकता है जब राज्य चाहे। एक वार्ड में एक वर्ष के बाद चुनाव होता है, दूसरे में 5 वर्ष तक भी नहीं होता। इन युक्तियों के कारण सरकार नगरपालिका में केवल उन्हीं सदस्यों को रखती है जो हानिरहित हैं और जिन्हें वह नहीं चाहती, उन्हें हटा देती है। इसके अलावा, अध्यक्ष नगरपालिका के निर्णय से बाध्य नहीं है। वह अपनी इच्छानुसार किसी भी प्रस्ताव को वीटो कर सकता है और इस पूरी बात की सबसे बड़ी मूर्खता यह है कि राज्य ने नगरपालिका से एक लाख अस्सी हजार का ऋण लिया है, लेकिन नगरपालिका को नए कर लगाकर अपना काम चलाना पड़ रहा है।

खुद को प्रबुद्ध और प्रगतिशील कहने वालों के राज्यों में प्रतिनिधि संस्थाओं की ऐसी ही स्थिति है।पिछड़े राज्यों में क्लर्क ही नगरपालिका का गठन करता है। वही नगरपालिका का संपूर्ण और एकमात्र संचालक है।

बजट और रिपोर्ट की भी यही स्थिति है। वर्ष 1926-27 की लिंबडी राज्य की वार्षिक रिपोर्ट में एक लाख पचास हज़ार की राशि है जो वास्तव में महाराजा कुमार (उत्तराधिकारी) की शिक्षा पर खर्च की गई थी, लेकिन रिपोर्ट में इसे शिक्षा विभाग के शीर्षक के तहत दिखाया गया है जैसे कि यह लोगों की शिक्षा पर खर्च की गई थी। इसी तरह महलों के अंदर सड़कों के निर्माण और मरम्मत पर खर्च की गई राशि को पीडब्ल्यूडी के अंतर्गत दिखाया गया है। इसी तरह इंदौर राज्य की वर्ष 1926-27 की वार्षिक रिपोर्ट में छह लाख रुपये की राशि का उल्लेख है जो वास्तव में लालबाग नामक उद्यान में महल के निर्माण पर खर्च की गई थी। लेकिन रिपोर्ट में इसे पीडब्ल्यू विभाग के अंतर्गत दिखाया गया है। उसी रिपोर्ट में उसी शीर्षक के

अंतर्गत एक लाख रुपये की एक और मद है जो वास्तव में शिकारगाहों पर खर्च की गई थी। वास्तव में, इन दोनों मदों को महल के शीर्षक के अंतर्गत दिखाया जाना चाहिए था, लेकिन तब महलों पर खर्च की गई कुल राशि राज्य की कुल आय का 22 प्रतिशत हो जाती*। इससे पता चलता है कि इन राज्यों द्वारा दिए गए आंकड़ों और बयानों पर भी भरोसा करना कितना खतरनाक है।

* भारत के सेवक पूना से लिया गया

अध्याय–13
वर्तमान परिस्थितियाँ
कुछ तथ्य और उदाहरण

यहाँ कुछ उदाहरण और उदाहरण दिए गए हैं, जिनके प्रकाश में पाठक स्वयं निर्णय लेंगे कि आज राज्यों में किस प्रकार का प्रशासन प्रचलित है? रीजेंसी के शासन के समय में भी किस प्रकार के नियम और कानून बनाए गए, जबकि ब्रिटिश सरकार उन्हें सीधे नियंत्रित करती थी, और राज्यों के लोग इतने अधिक उत्पीड़ित और सताए जाने के बावजूद आंदोलन क्यों नहीं कर सकते?

लगभग सभी भारतीय राज्यों में बोलने, प्रेस या संघ बनाने की स्वतंत्रता नहीं है। न्यायिक जाँच के आभास के बिना भी किसी पर निर्वासन, संपत्ति जब्ती और मलमूत्र का आरोप लगाया जा सकता है। वे व्यवस्था या सुरक्षा के दिखावे से भी वंचित हैं।

ऊपर जो कहा गया है, उसके समर्थन में तथ्यों का हवाला दिया जा सकता है, लेकिन हम यहाँ केवल कुछ स्पष्ट और विशिष्ट उदाहरण देकर ही संतुष्ट हो जाएँगे कि कैसे भारतीय राज्यों के लोगों का मुँह बंद किया जाता है और उन पर अत्याचार किया जाता है।

निमूचाणा के प्रसिद्ध अलवर के महाराजा द्वारा बनाए गए कानून के कच्चे अंश से निम्नलिखित उद्धरण है, जो चौंबर अहफ प्रिंसेस की स्थायी समिति के सदस्य भी हैं।

पाँच से अधिक व्यक्तियों की बैठक को इस अधिनियम के अर्थ में सार्वजनिक बैठक माना जाएगा जब तक कि विपरीत साबित न हो जाए। किसी भी विषय पर चर्चा करने के लिए कोई सार्वजनिक बैठक आयोजित नहीं की जाएगी जिससे अशांति पैदा होने की संभावना हो या कोई राजनीतिक विषय हो या ऐसे किसी विषय से संबंधित किसी लेखन या मुद्रित सामग्री का प्रदर्शन और वितरण किया जाए। किसी भी सार्वजनिक बैठक में ऐसे किसी विषय पर चर्चा या उपदेश नहीं दिया जाएगा जो अलवर राज्य, उसकी सरकार, उसके संप्रभु के हितों के विपरीत हो या महामहिम भारत के

राजा सम्राट, उनकी सरकार या भारत के किसी अन्य शासक राजकुमार के हितों के खिलाफ हो। कोई भी व्यक्ति सार्वजनिक बैठक को बुलाने, संगठित करने या अन्यथा जानबूझकर भाग लेने में खुद को शामिल नहीं करेगा या साजिश नहीं करेगा। कोई भी लिख नहीं सकता। राज्य के अंदर या बाहर कोई भी ऐसा लेख या दस्तावेज छापना, प्रकाशित करना या प्रसारित करना या लिखने, छापने या प्रकाशित करने या प्रसारित करने का प्रयास करना, जो महामहिम महाराजा अलवर और उनके शाही परिवार या उनकी सरकार या महामहिम महाराज भारत के सम्राट या भारत के किसी अन्य शासक राजकुमार के हितों के विरुद्ध, अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष रूप से, प्रवृति रखता हो। कोई भी व्यक्ति ऐसी किसी भी वस्तु पर हस्ताक्षर नहीं कर सकता, उसका आयात नहीं कर सकता या उसे अपने कब्जे में नहीं रख सकता। ऐसे व्यक्तियों को जब भी पाया जाएगा, उन्हें पांच वर्ष के कारावास या दो हजार रुपए तक के जुर्माने से दंडित किया जाएगा, यदि आवश्यक हो, तो अपराधियों को राज्य छोड़ने का आदेश दिया जा सकता है।

पटियाला के महाराजा जो चैंबर ऑफ प्रिंसेस के चांसलर हैं और जो इंग्लैंड में भारतीय राजकुमारों के मामले में प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, ने अलवर के महाराजा की तरह सभी राजनीतिक बैठकों पर प्रतिबंध लगा दिया है और हाल ही में कई अकालियों को सिर्फ इसलिए जेल में डाल दिया है क्योंकि उन्होंने धार्मिक दीवानों में चैंबर ऑफ प्रिंसेस द्वारा पारित प्रस्तावों पर चर्चा की थी। यह विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि ये दीवान गुरुद्वारे में आयोजित किए गए थे, न कि खुले में। अब प्रेस में हलचल को देखते हुए पटियाला राज्य के विदेश मंत्री ने अपने स्वामी की मूर्खता को छिपाने की कोशिश करते हुए कहा, 'आमतौर पर राजनीतिक बैठकें हमेशा हिंसक राजद्रोही प्रचार में बदल जाती हैं, जिसके कारण कानून और व्यवस्था के हित में राज्य क्षेत्र के भीतर ऐसी बैठकों पर फिलहाल रोक लगाना आवश्यक हो गया है।' जोधपुर राज्य के प्रेस अधिनियम के कुछ अंश निम्नलिखित हैं:-
(1) प्रिंटिंग प्रेस में सभी इंजन, मशीनरी, टाइप, लिथोग्राफिक पत्थर, उपकरण, बर्तन और अन्य संयंत्र या सामग्री शामिल हैं जो मुद्रण के उद्देश्य से उपयोग की जाती हैं।

(2) उदाहरण- साइक्लोस्टाइल एक प्रिंटिंग प्रेस है, लेकिन टाइपराइटर नहीं है।

(3) निषिद्ध विदेशी प्रकाशन में वे सभी प्रकाशन शामिल हैं जिन्हें भारत सरकार द्वारा निषिद्ध किया गया है।

(4) या इसकी किसी स्थानीय सरकार या किसी भारतीय राज्य द्वारा ग्यारह तोपों की व्यक्तिगत सलामी दी जाती है।

(5) 'मारवाड़ क्षेत्र में किसी भी व्यक्ति या प्रेस द्वारा महकमा खास* की पूर्व स्वीकृति के बिना कोई समाचार-पत्र, पुस्तक या कागज मुद्रित या प्रकाशित नहीं किया जाएगा।'

(6) 'मारवाड़ क्षेत्र में किसी भी व्यक्ति द्वारा कोई राजद्रोही या अश्लील साहित्य या राज्य की राजनीति से संबंधित सामग्री या ऐसे मामले जो अराजक आक्रोश या हिंसा के कृत्यों को भड़काने या सेना या नौसेना की वफादारी के साथ छेड़छाड़ करने या नस्लीय, वर्ग या धार्मिक दुश्मनी को भड़काने के लिए गणना किए गए हैं, मुद्रित या प्रकाशित नहीं किए जाएंगे।'

(7) 'मारवाड़ में कोई भी प्रिंटिंग प्रेस या प्रकाशक अपने प्रकाशन को किसी विदेशी प्रकाशन के साथ नहीं बदलेगा।'

लेकिन इसके लिए केवल राजकुमार ही ज़िम्मेदार नहीं हैं। भारत सरकार भी इस तरह के अत्याचार को कायम रखती है जब किसी राज्य का प्रशासन रीजेंसी के अधीन होता है। जोधपुर की रीजेंसी काउंसिल द्वारा पारित विनियमन से निम्नलिखित उद्धरण उद्धृत किए जा सकते हैं और जो अभी भी लागू है किसी भी प्रकार का कोई भी व्यक्ति जो किसी भी प्रकार का कोई भी गलत प्रतिनिधित्व करता है या अन्यथा, भारत के सम्राट या जोधपुर के महाराजा के प्रति घृणा या अवमानना उत्पन्न करता है या उत्पन्न करने का प्रयास करता है या उसके प्रशासन* के प्रति असंतोष या विश्वासघात उत्पन्न करता है, उसे राजद्रोह का दोषी माना जाएगा।

(1) 'किसी भी ऐसे विषय को आगे बढ़ाने या चर्चा करने के लिए कोई भी सार्वजनिक बैठक आयोजित नहीं की जा सकती है, जिससे सार्वजनिक शांति

को बढ़ावा, प्रकाशन या अशांति उत्पन्न होने की संभावना हो या किसी भी लिखित या मुद्रित सामग्री के प्रदर्शन, संचलन या वितरण के लिए कोई भी सार्वजनिक बैठक आयोजित नहीं की जा सकती है।'

(2) 'मारवाड़ का कोई भी व्यक्ति यह जानता है कि किसी अन्य व्यक्ति को ब्रिटिश सरकार या मारवाड़ दरबार के प्रति शत्रुतापूर्ण राजद्रोह संबंधी पर्चे या प्रतिबंधित समाचार पत्र या पत्रिकाएँ प्राप्त हुई हैं या कोई भी ऐसी बात जिससे सार्वजनिक अशांति या शांति भंग होने की संभावना हो, तो उसे 48 घंटे के भीतर निकटतम मजिस्ट्रेट या पुलिस अधिकारी को इसकी सूचना देनी चाहिए।'

(3) मारवाड़ का कोई भी नागरिक किसी ऐसे व्यक्ति को शरण या आश्रय नहीं देगा, जिसके बारे में वह जानता हो कि वह कुख्यात राजद्रोही है।

(4) मारवाड़ का कोई भी नागरिक ब्रिटिश सरकार या मारवाड़ दरबार के विरुद्ध राजद्रोही लेख या प्रतिबंधित समाचार-पत्र या पत्रिकाएँ प्राप्त नहीं करेगा, अपने पास नहीं रखेगा, वितरित नहीं करेगा या वितरित करने में मदद नहीं करेगा, कुख्यात राजद्रोहियों के साथ पत्र-व्यवहार या संगति नहीं करेगा।

भारतीय राज्यों में से नब्बे प्रतिशत, हैदराबाद राज्य, जो फारस और अफ़गानिस्तान की तरह ब्रिटेन के बराबर और स्वतंत्र स्थिति का दावा करता है, को छोड़कर, ऐसे निरंकुश कानून प्राप्त हैं।

लेकिन हम अपने कर्तव्य में विफ़ल हो जाएँगे यदि हम एक नए तथ्य या कारक को दर्ज नहीं करते जो भारतीय राज्यों के प्रशासन की मशीनरी में एक महत्वपूर्ण चक्र बन रहा है। यह उन्हें यूरोपीय बनाने की प्रक्रिया है। आज उन्हें जितने भी अंग्रेजी अधिकारी दिए जा सकते हैं, उन्हें लेने के लिए मजबूर किया जाता है। यह सरकार में दक्षता लाने के व्यापक लाभ के तहत किया जाता है। लेकिन इसका असली उद्देश्य प्रशासन में सुधार करना नहीं है, बल्कि निरंकुशता को बरकरार रखना है, ताकि उन पर अप्रत्यक्ष रूप से

शासन किया जा सके और ब्रिटिश भारत में सेवाओं के भारतीयकरण को संतुलित किया जा सके। इसके अलावा, यह दोनों पक्षों के लिए आकर्षक है। एक के लिए यह उसके कुकर्मों को छिपाने का एक तरीका है और दूसरे के लिए यह धन संचय करने और शासक बने बिना राज्य पर शासन करने का अवसर है।

हमने जो कहा है, उसे स्पष्ट करने के लिए यह कहना पर्याप्त होगा कि हमने जोधपुर के सभी अजीबोगरीब बर्बर और दमनकारी कानूनों का हवाला दिया है, जो रीजेंसी के समय में बनाए गए थे, जब उस राज्य में अंग्रेज अधिकारी पूरी तरह से और अकेले थे।

और किस प्रकार ये अधिकारी राज्यों में घोर बर्बरता करने में सहायता करते हैं और उसे अंजाम देते हैं, इसका अंदाजा उदयपुर राज्य के बंदोबस्त अधिकारी श्री सी.जी. चेन्विक्स ट्रेंच के आचरण से लगाया जा सकता है, जिन्होंने शांतिपूर्ण किसानों या बेगूं पर गोलीबारी का आदेश देते हुए सैनिकों को महिलाओं पर बरसाया और उनके स्कर्ट काट दिए और उन्हें नग्न कर दिया। यही कारण है कि भारतीय राज्यों में एक अंग्रेज एक उपकारकर्ता नहीं बल्कि आतंक और घृणा का स्रोत है और यही कारण है कि कई शासक बहुत भारी कीमत पर भी ऐसे औजार रखना पसंद करते हैं, ताकि वे अपने या अपने भारतीय अधिकारियों द्वारा किए गए ऐसे कामों के लिए सर्वोच्च शक्ति के सभी स्पष्टीकरणों और आपत्तियों से खुद को बचा सकें।

* इसकी आलोचना कैसे की जा सकती है?
* शासक स्वयं कार्यपालिका का प्रमुख होता है।

★

अध्याय–14
वर्तमान परिस्थितियाँ
सामाजिक जीवन

राजकुमारों और जागीरदारों का सामाजिक जीवन अपने आप में एक अनोखा रहस्य है। वे जितनी चाहें उतनी स्त्रियों से विवाह कर सकते हैं और जितनी चाहें उतनी रखैलें रख सकते हैं। न तो इन रखैलों और न ही उनके बच्चों के पास जर्मन रखैलों जैसा कोई मालिकाना हक होता है। उन्हें राजकुमार को खुश करके जो कुछ भी मिल जाता है, उसी पर संतोष करना पड़ता है। जहाँ तक हरम में विस्तृत जीवन का प्रश्न है, तो जयपुर महल का संक्षिप्त विवरण ही काफी होगा, जो एक आदर्श और विशिष्ट विवरण है। जयपुर राजकुमार के अधीन बंदी जीवन जीने वाली कुछ महिलाओं द्वारा दिए गए कथनों के अनुसार, वहाँ लड़कियों की खरीद के लिए एक नियमित विभाग था। इसके तत्वावधान में एक पटारखाना होता है। एक विभाग जिसमें सुंदर और युवा लड़कियों को रखा जाता है, उन्हें वहाँ नृत्य करना, गाना, संगीत वाद्ययंत्र बजाना और नाटक करना आदि सिखाया जाता है। प्रशिक्षित होने के बाद उन्हें अखाड़ा नामक दलों में विभाजित किया जाता है। 'प्रत्येक अखाड़े में दो लड़कियाँ हारमोनियम बजाने में, दो तबला बजाने में, दो वायलिन बजाने में, चार मजीरा बजाने में तथा चार नृत्य में निपुण (दो छोटी तथा दो बड़ी) तथा आठ ताली बजाकर समय बिताने में निपुण होती हैं। प्रत्येक अखाड़े का एक पर्यवेक्षक होता है जिसे जामादारनी कहते हैं।सभी अखाड़ों की एक जैसी विविध रंग-वेशभूषा (जैसे - केसरिया, हरा, लाल आदि) तथा एक जैसे आभूषण और आभूषण होते हैं। उन्हें आदेशित रंगों में ही प्रस्तुत होना होता है। हुजूर का अखाड़ा', माधो निवास का अखाड़ा, ग्रीन पैलेस अखाड़ा, झालीजी का अखाड़ा, चंदावतजी का अखाड़ा* आदि अखाड़े हैं। अखाड़ा, तनवरजी का अखाड़ा, नौ लेन का अखाड़ा जिसमें नौ पटार (लड़कियों) की नौ पंक्तियां होती हैं, इत्यादि इत्यादि। कुल मिलाकर महाराजा और महारानियों से संबंधित लगभग 40 अखाड़े हैं। लगभग पटार की संख्या एक हजार से पंद्रह सौ के बीच है। प्रशिक्षण गुनीजन खान

(संगीतकारों और अभिनेताओं का एक विभाग जिसमें पेशेवर वेश्याएं, गायक, नर्तक और अभिनेता शामिल होते हैं) के कर्मचारियों द्वारा दिया जाता है। उन्हें राज्य द्वारा अच्छे वेतन पर नियुक्त किया जाता है या जागीर दी जाती है। प्रत्येक अखाड़े के महलों के अंदर उनकी अपनी जेल और अदालतें होती हैं। अखाड़े में दस दासियां होती हैं। इसके अलावा, प्रत्येक महारानी का अपना अलग कर्मचारी होता है। इस प्रकार कुल मिलाकर लड़कियों और युवतियों की अनुमानित संख्या 2500 होती है।

लड़कियों और युवतियों को एक बार पटारखाने में प्रवेश करने के बाद अपने जन्म और धर्म की परवाह किए बिना मांस खाना और शराब पीना पड़ता है।

पटारों की पोशाक में चूड़ीदार पायजामा, (तंग पतलून) एक चोली, एक जैकेट और एक ढीला दुपट्टा होता है और यह वेश्याओं की पोशाक की तरह ही होता है। गायन और नृत्य के समय पटार वेश्याओं के समान लहंगा (स्कर्ट) पहनते हैं। जब भी किसी विशेष अखाड़े को अपना संगीत कार्यक्रम देने का आदेश दिया जाता है, तो उसके सदस्य महाराजा के सामने पूरी तरह सज-धज कर पेश होते हैं और अपने बेहतरीन करतब दिखाते हैं। अगर महाराजा प्रसन्न होते हैं, तो उन्हें इनाम देते हैं। पटारों को एक नाट्य पार्टी के अभिनेताओं और अभिनेत्रियों के सभी प्रदर्शनों की नकल करनी होती है। कभी-कभी ये उत्सव लगातार दो या तीन दिनों तक चलते हैं। एक नियम के रूप में, लड़कियों को बचपन से ही तीन या चार दिन और रात बिना सोए रहने की आदत डाल दी जाती है। जब भी महाराजा किसी लड़की से नाराज होते हैं, तो उसे या तो खंभे से बांध दिया जाता है या छत से लटका दिया जाता है और फिर कोड़े मारे जाते हैं या फिर उसे 'बीमारखाना' (रोगियों का घर) में क़ैद करके सज़ा दी जाती है। यह घर बहुत ही ख़ौफ़नाक और भयावह होता है।

ऐसे क़ैदियों को जौ की पिसी हुई रोटी और अपने हाथों से पका हुआ खाना खाना पड़ता है और एकांत में रहना पड़ता है।

पटरानी (यानी वरिष्ठ महारानी) को महल में सबसे ऊँचा दर्जा माना जाता है। कनिष्ठ महारानी दूसरे स्थान पर होती हैं, पुरदैत तीसरे, पासवान'

चौथे और मर्जिदान पाँचवें। पुरदैत को 5000/- रुपये प्रति वर्ष की जागीर दी जाती है और इसी तरह उनके बेटों को अलग से दी जाती है। पुरदैत को ताज़ीम यानी उपपत्नी, पसंदीदा का सम्मान प्राप्त होता है जब भी वे महाराजा और महारानियों के सामने पेश होते हैं, तो उनका स्वागत शाही व्यक्ति खड़े होकर करते हैं। पासवानों को अपने पैरों में चांदी और सोना दोनों पहनने का अधिकार है, इस सोने को 'नज़र सोना' कहा जाता है। इन पासवानों का कर्तव्य महाराजा के साथ लगातार रहना है और इसलिए उन्हें गाने और नाचने आदि के काम से छूट दी गई है।

पटार के बाद घाघरा वाली बाई का दर्जा है। इन महिलाओं को हरम के भीतरी छोर तक जाने की अनुमति है, जहाँ महल के प्रबंधक, अधिकारी और अन्य पुरुष कर्मचारी जा सकते हैं। प्रवेश द्वार की चौखट पर खड़े होकर वे पुरुषों से बात कर सकती हैं, लेकिन वे चौखट को पार नहीं कर सकती हैं। इन महिलाओं को सभी प्रकार की सेवाएँ प्रदान करने के लिए बनाया गया है। वे सभी दास हैं। उन्हें पटार की सेवा करने के लिए पाँच से दस के समूहों में नियुक्त किया जाता है। प्रत्येक अखाड़े की। उन्हें सभी छोटे-मोटे काम करने होते हैं। इसी तरह, उन्हें रानियों, परदेसियों और मर्जिदनों की सेवा करनी होती है। इन घाघरावाली बाईयों को भी दासियों की तरह हरम में भर्ती किया जाता है। यहाँ उनकी संख्या लगभग दो हज़ार है। इनके अलावा, इस वर्ग की लगभग 2000 अन्य महिलाएँ हैं जो विभिन्न अखाड़ों से संबंधित हैं।

जब महाराजा द्वारा देखी गई पटार, मर्जिदन या पासवान में से कोई गर्भवती होती है, तो महिला अधिकारियों और किन्नरों के माध्यम से महाराजा को तुरंत सूचना दी जाती है। यदि महाराजा उससे विशेष रूप से प्रसन्न होते हैं, तो उसके गर्भ को सुरक्षित रखा जाता है और सामान्य समारोहों के साथ, उसे जागीर और ताज़ीम प्रदान की जाती है।

महलों में रहने वाली सभी महिलाओं में से निम्नलिखित दो वर्गों की महिलाएँ बहुत दयनीय जीवन जीती हैं। और दयनीय जीवन :-
(1) दास लड़कियां जिन्हें जीवन भर महलों में रहना पड़ता है। और (2) पटार या अखाड़ों से संबंधित लड़कियाँ। प्रथम श्रेणी की लड़कियों के साथ

हमेशा बिल्लियों जैसा व्यवहार किया जाता है। उन्हें उपहार और दहेज में दिया जाता है। मालिक के खाने से बचने के लिए उन्हें खाना मिलता है। उन्हें पुराने कपड़े दिए जाते हैं। उनसे हर तरह की सेवा करवाई जाती है। जब भी वे अपने मालिक को नाराज़ करती हैं तो उन्हें बुरी तरह पीटा जाता है, कोड़े मारे जाते हैं, काठ में ठूंस दिया जाता है, लाल-गर्म लोहे से छुआ जाता है और इस तरह की अन्य यातनाएं दी जाती हैं। कभी-कभी उन्हें पीट-पीटकर मार डाला जाता है। यदि कोई सबूत आवश्यक है, तो कोई हाल ही के मामले पर ग़ौर कर सकता है जिसमें एक जागीरदार या मेवाड़ पर एक लड़की की हत्या करने का आरोप है, उसने मिट्टी का तेल फेंक दिया और फिर उसके कपड़ों में आग लगा दी।

द्वितीय श्रेणी की लड़कियों और युवतियों के संबंध में, इतना अंतर है कि उन्हें केवल कुछ निर्दिष्ट कार्य करने की आवश्यकता होती है। इसके अलावा, उन्हें शायद ही कभी उपहार या दहेज के रूप में दिया जाता है। इसके अतिरिक्त उनके सामाजिक जीवन में भी कोई अंतर नहीं है। जब उन्हें न तो अच्छी शिक्षा दी जाती है, न उनमें स्वाभिमान की भावना भरी जाती है, इसके विपरीत जब उन्हें यह सिखाया जाता है कि स्वामी को प्रसन्न करना ही उनका एकमात्र कर्तव्य है, उन्हें गंदे वातावरण में जीवन बिताने को कहा जाता है, गंदे गीत गाने को कहा जाता है, मौज-मस्ती करने को कहा जाता है और जब ऐसे वातावरण में उन्हें ब्रह्मचर्य का जीवन जीने को कहा जाता है, तो क्या आश्चर्य है कि इसका परिणाम केवल पतन और अवनति ही हो। जब ऐसी स्थिति है, तो उनसे कैसे आशा की जा सकती है कि वे पवित्र और स्वाभिमानी सामाजिक जीवन जियें। उनसे कैसे आशा की जा सकती है कि वे उच्च और श्रेष्ठ विचार रखें? उनकी लज्जा और अपयश की पूरी कहानी यहीं समाप्त नहीं होती। यहाँ तक कि उनके रिश्तेदार, महाराजा तो क्या, कभी भी उनमें से किसी को भी अपनी वासना का शिकार बना सकते हैं। संक्षेप में पूरी बात कहने के लिए तथा इस घृणित वर्णन से बचने के लिए, लगभग सभी महलों पर लागू निम्नलिखित तथ्य, वहाँ के जीवन की वास्तविक प्रकृति को उजागर करेंगे :-

(1) हर वर्ष आम तौर पर कुछ महिलाएँ महलों से भाग जाती हैं या भागने

का प्रयास करते समय पकड़ी जाती हैं।
(2) हर वर्ष आम तौर पर महलों में कुछ सनसनीखेज और रहस्यमयी मौतें होती हैं।
(3) लंबे बैंगन, मूली और ऐसी अन्य वस्तुओं को हरम में बरकरार नहीं रखा जाता, क्योंकि वे महिलाओं के गुप्तांगों में टूटी हुई पाई गई हैं और उन्हें बाहर से डॉक्टरों द्वारा निकाला गया है।

और पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि आज भी, जब ब्रिटिश सरकार स्वयं अपने द्वारा स्थापित रीजेंसी के माध्यम से जयपुर राज्य का प्रशासन कर रही है, ये हज़ारों बदक़िस्मत लड़कियाँ और महिलाएँ पहले की तरह ही उस भयानक नरक (महलों) में सड़ने को मजबूर हैं। शायद, यह महल के घोटालों के भयानक खुलासे के डर के कारण है, जो उन्हें मुक्त करने पर अवश्यंभावी हैं।

इस तरह से ब्रिटिश सरकार ने भारतीय राज्यों में गुलामी और बर्बरता को हतोत्साहित किया।

शादीशुदा महारानियों और राजपरिवार की अन्य महिलाओं की स्थिति भी नारीत्व की दृष्टि से अच्छी नहीं है। लेकिन उन्हें सभी सुख-सुविधाओं आदि का पूरा आनंद लेने का अवसर मिलता है। हाँ, उन्हें स्थानीय भाषाओं में कुछ शिक्षा दी जाती है और उच्च कुल की धारणा होने के कारण वे आम तौर पर सात्विक जीवन जीती हैं। लेकिन सामाजिक दृष्टि से उनका जीवन भी दयनीय है। उन्हें पर्दा का सख्ती से पालन करना पड़ता है। उनके माता-पिता उनके लिए वर ढूंढते समय देखते हैं कि उसके पास कोई बड़ी जागीर या राज्य है या नहीं। वे किसी अन्य बात पर ध्यान नहीं देते। कोई बड़ा जागीरदार या शासक, चाहे वह कितना भी कमजोर और भ्रष्ट क्यों न हो, वह जितनी चाहे उतनी लड़कियां रख सकता है। इसका उदाहरण उदयपुर राज्य (राजपूताना में एक प्रमुख राज्य) के उत्तराधिकारी की हाल ही में हुई और तीसरी शादी है। इस मामले में उत्तराधिकारी के शरीर का निचला आधा हिस्सा लकवाग्रस्त है। प्रेस में यह भी प्रकाशित हुआ कि लड़की इस तथाकथित विवाह के खिलाफ थी। फिर भी विवाह हुआ।
इसके अलावा, विवाह में होने वाले खर्च और अर्थहीन रस्में और ते हैं। जहाँ

रीति-रिवाज इतने चरम और बेतुके हो जाते हैं कि कई राजकुमारियाँ उचित देखभाल के अभाव में नहीं है। आज भी ऐसे राजपूत हैं जो गरीब हैं, फिर भी उन्हें राजसी वंश का दुर्भाग्य है और इसलिए वे विवाह की शर्मिंदगी से बचने के लिए अपनी बेटियों को जन्म लेते ही मार देते हैं। जहाँ विवाहितों को पर्दा प्रथा के कारण सार्वजनिक गतिविधियों में भाग लेने का कोई अवसर नहीं मिलता और जहाँ उन्हें मांस खाने, शराब पीने और घटिया स्वादों में अपना जीवन व्यतीत करने के लिए मजबूर किया जाता है, वहाँ अगर हम विधवाओं के असहनीय जीवन का वर्णन करें तो इसका मतलब होगा कि हम मानव जीवन के सबसे अरुचिकर और कष्टदायक अध्याय में प्रवेश कर रहे हैं और भी बहुत सी बातें हैं। लेकिन ये वे बातें हैं जो लोगों की आय और अल्प संसाधनों पर भारी असर डालती हैं क्योंकि, ये सभी खर्च सीधे या परोक्ष रूप से जनता से वसूल किए जाते हैं। हमने यहाँ केवल इन बातों का उदाहरण देकर ही संतोष कर लिया है। हमारा उद्देश्य केवल सभ्य दुनिया का ध्यान महिलाओं के असंख्य कष्टों और अभावों तथा राजकुमारों की फिजूलखर्ची और मनोबल की ओर आकर्षित करना है, जिसके लिए ब्रिटिश सरकार स्वयं राजकुमारों से कम ज़िम्मेदार नहीं है। विशेषकर मानवता में ऐसा कोई घिनौना काम और अत्याचार नहीं है जो इन ग़रीब लड़कियों और युवतियों पर, हरम की चारदीवारी के भीतर न किया जाता हो।

इस स्तर पर, पाठकों को स्वाभाविक रूप से सरदारों और जागीरदारों के जीवन की प्रकृति को जानने की इच्छा होगी। हम इसे दो कारणों से भी आवश्यक मानते हैं। पहला यह कि यह हरम की तरह ही सरकारी खजाने पर भारी कर लगाता है। दूसरा यह कि यह अपने अनोखे आकर्षण और जिज्ञासाओं के कारण है।

यहाँ उन सभी झूठे दिखावों और आडंबरों का वर्णन करना बेकार होगा, जिनका सहारा आमतौर पर पुराने जमाने के राजकुमार अपने महलों को सजाने और अपने शरीर को सजाने के लिए लेते हैं। प्रत्येक महल या प्रत्येक कक्ष को सजाने के लिए यहाँ विभिन्न देशों से विभिन्न रंगों और स्वादों की विभिन्न प्रकार की सामग्रियों की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार दरबारियों के वस्त्र और हथियार भी भिन्न-भिन्न और विविध होते हैं, तथा

उनके उपयोग के तरीके भी निश्चित होते हैं। इनके और दास सेवकों के अतिरिक्त, चांदी की छड़ियाँ ढोने वाले, सोने की छड़ियाँ ढोने वाले, चिलम ढोने वाले, ध्वजवाहक, शस्त्रवाहक, जलवाहक, जूतावाहक, गायक, भाट, नौटंकी करने वाली लड़कियाँ और कुलीन आदि के समूह होते हैं जो हमेशा राजकुमारों की सेवा में उपस्थित रहते हैं और जिनकी संख्या और परिमाण राज्य या जागीर की सीमा और आय के अनुसार होता है।

इसके अलावा, राजकुमार और उसके चहेतों के लिए घोड़ों के लिए अलग अस्तबल होते हैं। इसी प्रकार, उनके रहने, खाने आदि के तरीक़े भी उनकी अन्य प्रथाओं के अनुरूप होते हैं। उठते, सोते और भोजन करते समय घंटों गाना-बजाना एक नियम है। ऊँटों, हाथियों, गाड़ियों, मोटरों, रथों आदि के अस्तबलों में अन्य रीति-रिवाजों का पालन किया जाता है, जिनका प्रशासन और प्रबंधन अलग-अलग विभागों द्वारा किया जाता है, जिन्हें अक्सर उनके नाम पर रखा जाता है। इन जानवरों और वाहनों के लिए सोने, चांदी, रत्नों या अन्य तरीकों से जड़े और अलग-अलग आकार और रंगों के आभूषण और सजावट भी होती है। राज्य का अधिकांश राजस्व इन पर खर्च होता है। बेशक आजकल इन्हें 'परिवहन' शीर्षक के अंतर्गत दर्शाया जाता है।

हालाँकि, इस सारे वर्णन के बाद, महलों, उद्यानों के बारे में कुछ भी कहना बेकार है, खासकर तब जब आज भी राजकुमारों का मानना है कि उनकी याद को बनाए रखने का सबसे अच्छा तरीक़ा उनके स्नान के समय या अफ़ीम या किसी अन्य नशे का उपयोग करके असाधारण महलों और उद्यानों का निर्माण करना है, जिसका वे आदी हैं। उदाहरण के लिए, राजकुमार द्वारा अफ़ीम का प्याला लेने से पहले कवि को इसके गुणों का बखान करते हुए कई कविताएँ सुनानी होती हैं। उसी तरह पंडितों को स्नान और ईश्वर-पूजा के समय पवित्र श्लोकों का उच्चारण करना आवश्यक है। ये लगभग आधे दिन का समय लेते हैं। भोजन के मामले में भी ऐसा ही है, पकवान में 40 या 50 प्रकार के व्यंजन होने चाहिए, जिनमें से प्रत्येक को अच्छी तरह से तैयार किया जाना चाहिए और सोने और चांदी के बर्तनों में परोसा जाना चाहिए। जो लोग व्यंजन परोसते हैं, उन्हें भी सुंदर, साफ और

साफ-सुथरे कपड़े पहनने चाहिए। भोजन के बाद वे आमतौर पर बिस्तर पर चले जाते हैं और फिर लगभग 3 बजे उठते हैं। शिकार भी शाम को होता है और जब वे शिकार से लौटते हैं तो उपरोक्त प्रक्रिया को पूरा किया जाता है। कभी-कभी रंगों का प्रदर्शन भी करवाया जाता है, जैसे किसी दिन लाल रंग का आदेश दिया जाता है, तो हर तैयारी लाल रंग की होती है। जो कालीन बिछाए जाते हैं, जो पर्दे दीवारों पर टांगे जाते हैं, जो कपड़े पहने जाते हैं, और जो प्याले और बोतलें होती हैं, वे सब लाल रंग की होती हैं।

त्योहारों और जुलूसों में भी यही मर्यादा देखी जाती है। हर त्यौहार, चाहे वह महत्वपूर्ण हो या नहीं, बड़ी धूमधाम और विलासिता के साथ मनाया जाता है। हर त्यौहार पर हजारों खर्च किए जाते हैं। छोटे पैमाने पर कोई काम करना उनकी शान के खिलाफ़ माना जाता है। यह सब ग़रीब लोगों के बारे में बताता है। एक तरफ़ उन्हें बेगार में काम करने के लिए मजबूर किया जाता है और दूसरी तरफ़ उनसे उनके पैसे छीन लिए जाते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि कुछ शिक्षित राजकुमारों ने यहाँ-वहाँ पुरानी रीति-रिवाजों में कुछ बदलाव किए हैं, लेकिन इसके बजाय उन्होंने नई रीति-रिवाजों को लागू किया है, जिनकी लागत काफी अधिक है। सच तो यह है कि जहाँ तक सार्वजनिक धन के दुरुपयोग और लोगों की कठिनाइयों का सवाल है, कोई महत्वपूर्ण बदलाव नहीं हुआ है।

* शासकों के नाम पर रखे गए दल,
राजकुमारियाँ, प्रसिद्ध महल और हिंदू देवता।

★

अध्याय–15
वर्तमान परिस्थितियाँ
किसान

अब तक हमने राज्यों के विभिन्न महत्वपूर्ण पहलुओं और विभागों के बारे में चर्चा की है। अब पाठकों को लोगों के बारे में जानकारी लेनी चाहिए। भारतीय राज्यों में कस्बों और शहरों की संख्या उंगलियों पर गिनी जा सकती है। 99 प्रतिशत लोग गांवों में रहते हैं। वे मुख्य रूप से दो समूहों में आते हैं- (क) किसान और (ख) खेतिहर मज़दूर और कारीगर। लगभग सभी राज्यों में मिट्टी उपजाऊ है, लेकिन इसीलिए कई जगहों पर राज्य 100 रुपये प्रति एकड़ तक भूमि-कर वसूल सकता है और लगा सकता है और जहाँ यह अच्छा नहीं है, वहाँ इसे सुधारा जा सकता है लेकिन इसे सुधारने की परवाह कौन करता है? लगभग अधिकांश राज्य इस दिशा में एक पैसा भी खर्च नहीं करते हैं। दूसरी ओर जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं कि चारागाहों आदि में सुविधाओं के अभाव के कारण खाद में लगातार कमी आ रही है। यह बदले में फसलों से होने वाली उपज पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। सबसे बड़ी बात यह है कि उनके पास ज़मीन पर कोई मालिकाना हक़ नहीं है। वे सिर्फ़ अपनी मर्ज़ी से किराएदार हैं और इसलिए उन्हें कोई भी व्यक्ति बेदखल कर सकता है, जो ज़्यादा क़ीमत देने के लिए बोली लगाता है। नतीजतन, ग़रीब किसान अपनी ज़मीन खो सकता है जिसे उसने सालों की लगातार मेहनत और ऊर्जा के बाद खेती के लायक बनाया था, पलक झपकते ही। इसलिए स्वाभाविक है कि वे इसे सुधारने में बहुत उत्साही नहीं हैं। काठियावाड़ राज्य के किसानों को अपने खर्च पर बनाए गए घरों पर भी मालिकाना हक़ नहीं है, उन्हें कभी भी उनके घरों से निकाला जा सकता है और उनकी खेती की ज़मीन के साथ-साथ उन्हें निकाला भी जा चुका है।

इस पुस्तक के लेखक को कई वर्षों तक किसानों के बीच उनके भरोसेमंद मित्र और शुभचिंतक के रूप में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और इसलिए वह जानते हैं कि भारतीय किसान कितना दयनीय जीवन जीते हैं, वास्तव में, जिन जगह में वे गरीब किसान रहते हैं, वे सूअरों के बिलों से बेहतर नहीं हैं। पैसे के अभाव में वे घर दूसरों से बनवा भी नहीं सकते। वे हर काम

अपने हाथ से ही बेढंगेपन और अनाड़ीपन से करते हैं। इन सबके अलावा, वे सबसे सस्ती और सबसे मोटी सामग्री का उपयोग करते हैं। मिट्टी की दीवारें भी पर्याप्त ऊँची नहीं हैं। चोरों और लुटेरों के सामान्य आतंक के कारण उनके घरों में खिड़कियाँ नहीं होंगी। न ही वे अपनी पत्नियों और बच्चों के साथ गर्मियों में भी बाहर सोएँगे, जब लोग आम तौर पर पंखे के बिना नहीं रह सकते। राज्य के अधिकांश बाहरी जिलों की खुली हवा में ऐसे चोर-लुटेरे भरे पड़े हैं, जो सोते हुए लोगों के फटे-पुराने कपड़े भी चुरा लेते हैं। जहां तक उनके कपड़ों का सवाल है, तो इतना ही कहना काफ़ी है कि उनका इस्तेमाल तब तक किया जाता है, जब तक कि वे पूरी तरह से टुकड़े-टुकड़े होकर बेकार न हो जाएं। इसके बाद भी उन्हें फेंका नहीं जाता। उन्हें इकट्ठा करके मोटी चादरों में बांधकर सर्दियों में इस्तेमाल किया जाता है। उनसे ऐसी अजीब-सी दुर्गंध आती है, जो बर्दाश्त से बाहर होती है।

जब ऐसी हालत हो तो शौचालय और कपड़े धोने के साबुन की तो बात ही क्या? वे दिन में पूरे 16 घंटे काम करते हैं। उन्हें नहाने और कपड़े ठीक से धोने तक का समय नहीं मिलता। उनके घर आम तौर पर 19 से 20 फुट लंबे, 7 से 8 फुट चौड़े और 5 से 4 फुट ऊँचे होते हैं। इसी मिट्टी की झोंपड़ी में रसोई, मथनी, मिट्टी का छोटा-सा अन्न भंडार, मिट्टी के बर्तन जिनमें दैनिक उपयोग की वस्तुएं, ईंधन, कृषि उपकरण, पानी के बर्तन आदि रखे होते हैं। रात में बछड़ों को भी वहीं रखा जाता है। जिस घर में उन्हें रहना और सोना पड़ता है, उसकी हालत ऐसी ही होती है। उनके बर्तन और घड़े भी उनकी सामान्य स्थिति के अनुरूप ही होते हैं। मुश्किल से किसी के पास तांबे या पीतल के तीन-चार बर्तन होते हैं। बाक़ी मिट्टी और लकड़ी के बर्तन होते हैं।

यही स्थिति भोजन की भी है। गाय-भैंसों के मालिक होने के बावजूद उनके बच्चों को दूध, दही और मक्खन का स्वाद बहुत कम ही मिलता है। सुबह वे मलाई-दही के साथ दलिया खाते हैं, दोपहर में मोटे और सस्ते मक्के की रोटी खाते हैं, अक्सर सब्ज़ी नहीं, सिर्फ नमक और मिर्च के साथ। शाम को नमक वाली रोटी या खेत से आसानी से मिल जाने वाली कोई उबली हुई सब्ज़ी उनका भोजन बनती है। यहाँ तक कि अच्छे-अच्छे त्यौहारों

के अवसर पर भी उन्हें अधिक से अधिक गुड़ का एक टुकड़ा और दूध में पका हुआ दलिया ही मिल पाता है।

पुरुषों का जीवन तो और भी दयनीय है, दिन में उन्हें महिलाओं से अधिक काम करना पड़ता है। रात में उन्हें अपने खेतों और पशुओं की भी रखवाली करनी पड़ती है। राजकुमारों और जागीरदारों ने शिकार के लिए संरक्षित क्षेत्र बनाए हैं, जहाँ आम तौर पर बाघ, जंगली सूअर, खूंखार सूअर आदि रहते हैं, जिन्हें अगर दो घंटे भी न रोका जाए तो वे फसल को नष्ट कर देते हैं। किसान उन्हें गोली भी नहीं मार सकते। कुछ राज्यों में तो वे उन्हें मार सकते हैं, लेकिन अपने खेतों की सीमा के भीतर ही। लेकिन यह अव्यवहारिक है। क्योंकि खेत में घायल होने पर भी वे भागकर अपने क्षेत्र से बाहर निकल सकते हैं और इस तरह अधिकारियों को ग़रीब किसानों को परेशान करने का मौका मिल जाता है। अक्सर उनके परिवार के लोग जो निगरानी रखते हैं, उनके हमले का शिकार हो जाते हैं और कभी-कभी उनकी बकरियाँ आदि भी।

चौकीदारों का व्यवहार भी कम आश्चर्यजनक नहीं है। अधिकांश राज्यों में चौकीदार नहीं हैं और जहाँ हैं भी, वे चोरों से आसानी से मिल जाते हैं। क्योंकि, गाँव का उन पर कोई नियंत्रण या अधिकार क्षेत्र नहीं है। यदि वे चोरी की रिपोर्ट करते हैं, तो उनके रिश्तेदार ही वास्तविक अपराधों पर नहीं, बल्कि केवल संदेह के आधार पर महीनों तक परेशान किए जाते हैं। लेकिन दुःखद बात यह है कि ये छोटे-मोटे अत्याचारी, जिनका काम ग्रामीणों की रक्षा करना नहीं, बल्कि उन्हें परेशान करने और आतंकित करने के अवसरों पर नज़र रखना है, ग्रामीणों की क़ीमत पर ही बनाए रखे जाते हैं। उन्हें उन्हें भोजन, तंबाकू, अफीम, खाट, बिस्तर या ऐसी अन्य चीजें देनी पड़ती हैं, जिनकी वे मांग कर सकते हैं। यदि कोई उनकी नाराजगी का कारण बनता है, तो वे न केवल उस पर हमला करते हैं, बल्कि झूठी और मनगढ़ंत रिपोर्ट के जरिए उसे मुकदमे में भी घसीटते हैं, जिसमें यदि उसे सज़ा नहीं मिलती है, तो उसे महीनों तक परेशान किया जाना तय है। और किसान के लिए इसका मतलब है मौत, क्योंकि उसकी एक दिन की अनुपस्थिति उसके छह महीने के मीठे और कठोर उपकार को बर्बाद कर

सकती है। यही कारण है कि किसान आम तौर पर जहाँ तक संभव हो अदालतों में जाने से बचते हैं, यहाँ तक कि उन मामलों में भी जिनमें उनकी जीत पक्की है। लेकिन वे लाचार हैं। आज के गाँवों पर अतीत के गाँवों के विपरीत उनके बुज़ुर्गों का शासन नहीं है लेकिन पाठक यह जानकर आश्चर्यचकित होंगे कि एक बहुत मेहनती और दयनीय जीवन जीने और दिन-रात मेहनत करने के बाद भी, भारतीय राज्यों के किसानों को प्रतिदिन केवल डेढ़ आना मिलता है।*

* अधिक जानकारी के लिए बिजौलिया के अख़बार देखें।

अध्याय–16
वर्तमान परिस्थितियाँ
कृषि मज़दूर और शिल्पकार

कृषि मज़दूरों और शिल्पकारों की हालत किसानों से भी ज्यादा दयनीय है। किसानों के पास कम से कम ज़मीन तो है, लेकिन इन बेचारों के पास कुछ भी नहीं है। आधुनिक औज़ारों और उपकरणों की तो बात ही क्या, उनके पास पुराने और जंग लगे औजारों का पूरा सेट भी नहीं है। सबसे पहले, ये ऊपर बताए गए दरिद्र किसान ही हैं, जिन पर वे अपना जीवन यापन करते हैं। वे उन्हें इससे ज़्यादा कुछ नहीं दे सकते लेकिन उनसे जो थोड़ा-बहुत मिल सकता है, उसे पाने का रास्ता भी मुश्किलों से भरा है। रैगर की घातक प्रथा के कारण जो हमेशा उनके पीछे लगी रहती है, वे अपने कर्तव्यों और किसानों के प्रति ठीक से ध्यान नहीं दे पाते। इसका नतीजा यह होता है कि वे किसानों की नाराज़गी मोल लेते हैं और दूसरी तरफ़, वे स्वतंत्र श्रम भी नहीं कर सकते, क्योंकि उन्हें लगभग सभी राजकीय कर्मचारियों से अवैतनिक और बेगार करवाना पड़ता है। इन सबके अलावा, उन्हें बेगार में काम करते हुए भी अपना भोजन खुद ही करना पड़ता है। इतना ही नहीं, भले ही उन्हें अपने औजार मिल जाएं। बेगार में काम करते समय जो टूट जाते हैं, उन्हें अपनी जेब से ठीक करवाना पड़ता है। अगर कोई बेगार करने से इनकार करता है, तो उसे गाली-गलौज, कोड़े मारने से लेकर जेल जाने तक कुछ भी झेलने के लिए तैयार रहना पड़ता है। बेगारी का औसत कार्य दिवस भी 12 घंटे का होता है।

उनके घर उनके मालिकों के आलीशान महलों की तुलना में पूरी तरह से चूहे के बिल जैसे दिखते हैं। वे मुश्किल से बारिश सह पाते हैं। उनके कपड़ों और बिस्तरों के बारे में जितना कम कहा जाए उतना अच्छा है। उनमें से शायद ही कोई ऐसा हो जो सिर्फ ओढ़ने-ओढ़ने के अभाव में निमोनिया का शिकार न हो जाए। गाँवों में काम करने वाले के लिए यह सबसे बड़ी विपत्ति है क्योंकि एक तो अस्पताल गाँवों से बहुत दूर स्थित हैं फिर ये शहरी अस्पताल ग़रीब ग्रामीणों के मामलों पर कोई ध्यान नहीं देते। इसलिए कोई

दूसरा विकल्प न होने पर लोग दर्द वाले स्थानों को कपड़े की जलती हुई कुंडली या लाल-गर्म लोहे से जलाते हैं, जैसे वे मवेशियों के दर्द वाले स्थानों को जलाते हैं। इसी कारण से राजपूताना के सुदूरवर्ती जिलों और मध्य भारत के अधिकांश भागों में शायद ही कोई किसान या खेतिहर मज़दूर ऐसा मिलेगा जिसके शरीर पर जलने के निशान न हों।

वास्तव में, गाँव के मज़दूर का जीवन भयंकर क्रूरताओं और दुर्भाग्यों की एक जीती जागती सूची के अलावा और कुछ नहीं है और इसमें आश्चर्य की क्या बात है जब शासक उन्हें जानबूझ कर इस स्थिति में रखते हैं और जब उनके शासक मानते हैं कि उन्हें भूखा रखकर ही वे उन्हें अपने अधीन रख सकते हैं।

लेकिन स्थिति की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि वे अपना पेशा नहीं बदल सकते। अगर वे बदलते भी हैं तो उन्हें दंडित किया जाता है। सामाजिक दृष्टि से भी उन्हें अपमानित जीवन जीने के लिए मजबूर किया जाता है। उदाहरण के लिए, भील, बल्लाई, चमार, भांभी आदि जैसे खेतिहर मजदूरों के विभिन्न वर्ग जिनकी संख्या करोड़ों में है, वे रेशमी या अन्य महंगे वस्त्र और कपड़े या सोने-चाँदी के आभूषण नहीं पहन सकते। वे सिपाही के सामने भी खाट पर बैठे या लेटे नहीं रह सकते। तांगा, गाड़ी आदि साधन रखने की तो बात ही क्या, उन्हें टट्टू पर भी सवारी करने की मनाही है।

बेगार के बुरे प्रभावों का अंदाजा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि उन्हें शिकार किए गए जानवरों की लाशें और मांस खाना पड़ता है, क्योंकि ये राक्षस, किसी भी व्यक्ति को जब चाहे गिरफ़्तार कर सकता है और जब तक चाहे उसे अपने पास रख सकता है फिर राज्य के कर्मचारियों के लिए कोई निश्चित वर्दी न होने के कारण कोई भी फैशनेबल व्यक्ति भी खुद को राज्य का सिपाही बताकर बेगार में अपना काम करवा सकता है। प्रेतबाधा के लिए, जो हम महाराजाओं और जागीरदारों के लिए एक दैनिक आनंद है, हज़ारों ऐसे लोगों को इकट्ठा करके बेगार में ले जाया जाता है। उनके पास पहनने के लिए न तो कपड़े होते हैं और न ही जूते। उनके पास केवल दो कपड़े होते हैं, एक कमर के चारों ओर और दूसरा सिर के चारों ओर। इस स्थिति में, सूर्य की तपती किरणों में, उन्हें पहाड़ियों, घाटियों और जंगलों से

होकर गुज़रना पड़ता है, जो काँटों और चुभने वाले पत्थरों से भरे होते हैं। इन जुलूसों में कुम्हारों को सिर पर पानी के घड़े रखकर चलना पड़ता है, और अगर संयोग से रात हो जाए तो नाइयों को हाथ में मशाल लेकर चलना पड़ता है और यह सब बेगार में करना पड़ता है। उनके दुर्भाग्य, क्लेश और अपमान की कहानी अभी समाप्त नहीं हुई है। किसानों को अपनी बैलगाड़ी देनी पड़ती है, नाइयों को प्रतिदिन बारी-बारी से राज्य के भवनों की सफ़ाई और रोशनी करनी पड़ती है, उच्च राज्य अधिकारियों के शरीर की मालिश करनी पड़ती है, उनके कपड़े धोने पड़ते हैं और बर्तन साफ करने पड़ते हैं। भीलों को महीनों तक जंगल में घास काटनी पड़ती है और कुछ अन्य को उसे घास-भंडार तक ले जाना पड़ता है। उन दिनों वे शाम पाँच बजे के बाद इस मनहूस काम से निपट लेते हैं, उसके बाद वे खुले जंगलों से कुछ ईंधन या घास इकट्ठा करने निकल पड़ते हैं और उसे बाजार में बेच देते हैं, बस इसी आय से उन्हें अपना दिन गुजारना पड़ता है। संक्षेप में कहें तो उनके साथ जानवरों से भी बदतर व्यवहार किया जाता है। पशुओं को काम करने के बाद भोजन और आराम दिया जाता है लेकिन धरती माता के इन उपेक्षित पुत्रों को इतना भी नहीं मिलता लेकिन उनके लिए यह केवल विपत्ति नहीं बल्कि भाग्य है क्योंकि इससे बचने का कोई रास्ता नहीं है। अगर वे बेगार के अत्याचार के खिलाफ शिकायत दर्ज कराते हैं तो कोई नहीं सुनता। न ही, जैसा कि हमने ऊपर दिखाया है, किसान, खेतिहर मज़दूर, चरवाहे, ग्वाले और दास इस दयनीय स्थिति से छुटकारा पाने के लिए एक राज्य से दूसरे राज्य में पलायन कर सकते हैं। अगर वे ऐसा करते हैं तो ब्रिटिश सरकार की ताकत उनके प्रत्यर्पण में मदद करेगी और इस तरह वे अपने पुराने दुश्मनों के चंगुल में फिर से खुद को पाएंगे, जो अब क्रोधित हैं। इसीलिए उनकी जान इतनी सस्ती समझी जाती है। यह असामान्य नहीं है कि वे क्रोधित जानवरों द्वारा झपट कर मारे जाते हैं या शिकारी की गोली का शिकार हो जाते हैं, फिर भी उनके रिश्तेदारों को शायद ही कोई मुआवज़ा दिया जाता है जैसे कि मरने वाला आदमी नहीं बल्कि कुत्ता था। जोधपुर राज्य के बाली नामक ज़िले में भी भिखारियों के पुराने बारूद के भण्डार में विस्फ़ोट हो गया, जिससे कई भिखारी जलकर राख हो गए। इन मज़दूरों के

परिजनों को भी उचित मुआवज़ा नहीं दिया गया। इसी प्रकार उदयपुर राज्य में फ़तेह लाल नामक एक राजकीय कर्मचारी ने एक भिखारी को पीट-पीटकर मार डाला। इस सबके लिए उसे केवल 200 रुपये का जुर्माना भरना पड़ा। आज भी ऐसी घटनाएँ भारतीय राज्यों में दैनिक जीवन का हिस्सा हैं।

ग़रीब लोग जेलों में भी इन अत्याचारों से बच नहीं पाते। वहाँ उन्हें अपने बिस्तर और भोजन का प्रबंध स्वयं करना पड़ता है। यदि कोई ऐसा नहीं कर सकता तो राज्य को यह खर्च उठाना पड़ता है। उसकी रिहाई के बाद उसे यह खर्च उठाना पड़ता है, यदि आवश्यक हो तो उसकी बिल्लियों, कपड़ों, बटों आदि की नीलामी करके भी। अब इतने आंदोलन के बाद कुछ राज्यों ने इन प्रथाओं को केवल अपनी राजधानियों में ही समाप्त कर दिया है। बाहरी ज़िलों और जागीरों में वे पहले की तरह प्रचलन में हैं, कुछ स्थानों पर पुरुषों को कई वर्षों तक बिना किसी काग़ज़ात और कानूनी कार्यवाही के क़ैद में रखा जाता है।

हाल के आंदोलनों के कारण कुछ तथाकथित प्रगतिशील राज्यों ने नाम के लिए बेगार को समाप्त कर दिया है। इसके बजाय उन्होंने आदेश दिया है कि मज़दूर को मजबूर किया जाएगा, किसी को भी अपना पेशा छोड़ने की अनुमति नहीं दी जाएगी, लेकिन इसका भुगतान किया जाएगा, भुगतान के एक विशिष्ट उदाहरण के रूप में हम बूंदी राज्य द्वारा निर्धारित मजदूरी का उल्लेख करेंगे। इस राज्य के नियमों के अनुसार दो बैलों और एक आदमी की बैलगाड़ी को केवल आठ आने प्रतिदिन का भुगतान किया जाना था।

इनसे पाठक स्वयं ही अनुमान लगा सकते हैं कि इन नियमों के द्वारा राज्यों ने बेगार की बर्बरता समाप्त कर दी है या उसे केवल वैधानिक बना दिया है, विशेषकर आज के अभाव और अभाव के दिनों में, गाँवों में भी एक आदमी एक दिन छह आना में बड़ी मुश्किल से गुज़ारा कर पाता है। इसके अलावा, यह नाममात्र की मजदूरी भी हमेशा नहीं दी जाती। बेचारे बेगारी को अक्सर दिन भर कड़ी मेहनत करने के बाद खाली हाथ लौटना पड़ता है। कभी-कभी उसके काम में खामियां पाई जाती हैं और इस प्रकार मज़दूरी शून्य हो जाती है। राज्यों के लोग स्वभाव से शांतिप्रिय होते हैं और वर्तमान

प्रशासन व्यवस्था ने उन्हें इस हद तक नपुंसक बना दिया है कि वे सरकार के खिलाफ विद्रोह करने के लिए तैयार नहीं हैं, अधिकारियों के खिलाफ़ संवैधानिक रूप से आगे बढ़ने के लिए तैयार नहीं होंगे और वे ऐसा करने की हिम्मत कैसे कर सकते हैं, जब वे राज्यों में और विशेष रूप से बाहरी जिलों और जागीरों में रहते हैं, तो उन्हें यह आशंका होती है कि कुछ भाड़े के गुंडे उन्हें पीट सकते हैं और कुछ प्रोत्साहित चोरों के दल द्वारा लूट लिए जा सकते हैं या उनके घर और फ़सलों को कोई भाड़े का सिपाही आग के हवाले कर सकता है।

दास

दासों में भी कई समुदाय हैं, जैसे दरोगा, हजूरी,रावण राजपूत, चेला और घोला आदि। इन्हें लगभग सभी राजा, नवाब और जागीरदार, हिंदू और मुस्लिम समान रूप से रखते हैं। उन्हें बस मालिक की मर्ज़ी के मुताबिक़ रखा जाता है। सबसे बढ़िया और सबसे बढ़िया भोजन जो वे चाहते हैं, वह है अपने मालिक के खाने से मिलने वाला भोजन। उनकी पत्नियाँ और बेटियाँ उनकी एकमात्र संपत्ति और उनकी वासना और इच्छाओं को पूरा करने का साधन मात्र मानी जाती हैं। उनकी शादियाँ और तलाक उनके मालिकों की मनमानी पर निर्भर करते हैं। उन्हें और उनके बच्चों को आज भी दहेज में दे दिया जाता है। अगर वह किसी दूसरे राज्य में शरण ले लेता है, तो उसे ऊपर बताए गए नियमों के अनुसार केवल रोस्टर के रूप में उनके दावे के आधार पर प्रत्यर्पित कर दिया जाता है और अगर वह जिस जगह भाग गया है, वह ब्रिटिश क्षेत्र है, तो उसके खिलाफ़ चोरी आदि के झूठे आरोप लगाए जाते हैं और या तो उसे आत्मसमर्पण करने के लिए मजबूर किया जाता है या गिरफ्तार कर लिया जाता है। आज भी गुलामी को नियंत्रित करने वाले कानून हैं। कुछ राज्यों में इन्हें समाप्त कर दिया गया है, लेकिन केवल नियमों के रूप में। व्यवहार में वे पहले की तरह ही लागू हैं। ये समुदाय भी गुलामी के आदी हो चुके हैं। यहाँ यह दोहराना बेकार है कि यातनाएँ उन पर लगाए गए जुल्म। उन पर अध्याय XIV में पहले ही चर्चा की जा चुकी है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि रावण राजपूतों और अन्य समुदायों में कुछ ऐसे व्यक्ति हैं जो अपने समुदायों के अपमान को महसूस करने लगे हैं और अपनी

स्थिति सुधारने की कोशिश कर रहे हैं। लेकिन वे बहुत कम हैं और इसलिए महत्वहीन हैं। जोधपुर राज्य द्वारा बनाए गए गुलामी कानून के निम्नलिखित अंश, जो हमारे नायकों को प्रभावित करते हैं, गुलामों की स्थिति और उनके प्रति राजकुमारों की मानसिकता पर प्रकाश डालते हैं :-

'यदि दारोगा मालिक की स्थिति भूमि आवश्यकताओं के अनुरूप सेवा से विचलित होते हैं, तो वे कानूनी रूप से पर्याप्त सेवा लेने के हकदार हैं।'

यदि दारोगाओं (दासों) की संख्या मालिक की स्थिति से अधिक है। वह अपेक्षित संख्या को रख सकता है और बाक़ी को निकाल सकता है, जो बुलाए जाने पर मालिक के घर में विवाह और अन्य समारोह में भाग लेंगे और कुछ समय के लिए वहाँ रहेंगे जैसा कि वह चाहता है। वह उन्हें रोटी देगा।

जिन राजपूतों के घर में दरोगा (दास) पैदा हुए हैं और उन्होंने उनका पालन-पोषण किया है, वे अपनी बेटियों के साथ-साथ इन दरोगाओं की बेटियों को भी दहेज़ में देने के हक़दार होंगे। राजपूत जो पद पर हैं, वे दरोगा की बेटी को भी दहेज़ में देने के हकदार होंगे। मालिक उन दरोगाओं की बेटियों को भी दहेज़ में देने का हक़दार होगा, जो संख्या में मालिक के पद और आवश्यकता से अधिक होने के कारण अन्यत्र नौकरी की तलाश में हैं। इसे हाल ही में निरस्त किया गया है, केवल बाहरी दुनिया को धोखा देने के लिए नहीं।

फैक्ट्री कर्मचारी

फैक्ट्री कर्मचारियों की स्थिति गुलामों के बीच खेतिहर मज़दूरों की तुलना में कम दयनीय है। उन्हें आम तौर पर सुबह पांच बजे से शाम को 7 या 7.30 बजे तक 12 या 13 घंटे काम करना पड़ता है। विशिष्ट उदाहरण देने के लिए, किशनगढ़ मिल और गुलाबपुरा (मेवाड़) जिनिंग कारखानों में, उन्हें सुबह 6.30. और सुबह 5 से शाम 7 और 12 बजे तक काम करना पड़ता है। शाम को 7.30 बजे तक।इस 11 से 14 घंटे के कार्य दिवस के लिए मज़दूरी का पैमाना इस प्रकार है, पुरुषों के लिए छह से आठ आने प्रतिदिन, महिलाओं के लिए चार से पाँच आना तथा कम उम्र के लड़के-लड़कियों के लिए तीन से चार आना प्रतिदिन। यह अल्प मज़दूरी भी अल्प बहानों पर

काट ली जाती है। किसी भी कारण या वजह से पाँच मिनट की भी देरी से ग़रीब मज़दूर को आधे दिन की मज़दूरी से हाथ धोना पड़ता है। काम करते समय बीमारी या चोट के कारण हुई सारी अनुपस्थिति को गिना जाता है और उसका भुगतान नहीं किया जाता।

मज़दूरों के लिए नियोक्ताओं द्वारा कोई आवास व्यवस्था नहीं की गई है। जिस चौकड़ी में वे रहते हैं, वह दूसरे लोगों द्वारा बनाई गई है। लेकिन इनका निर्माण केवल मज़दूरों से कम से कम ख़राब हवादार जगह का अधिकतम किराया निचोड़ने के दृष्टिकोण से किया गया है। उन पर सरसरी निगाह डालने से ही यह तथ्य सामने आ जाएगा कि वे मानव निवास के लिए नहीं हैं। शायद शहरों में अमीर लोगों द्वारा अपने कुत्तों के लिए बनाए गए क्वार्टर इनसे बेहतर हैं। अगर कुछ के दरवाज़े टूटे हुए हैं, तो दूसरों की जड़ें ठीक से नहीं हैं। नतीजा यह है कि कोई भी मजदूर चोरों के डर से अपने दो दिन के खाने को भी अपने बिलों में बंद नहीं रखना चाहता। बहुत से लोग गाँवों में रहना पसंद करते हैं और इसलिए उन्हें हर दिन चार से आठ मील लंबा रास्ता तय करना पड़ता है, ताकि वे सही समय पर कारखानों तक पहुँच सकें, इसलिए उन्हें अपने घर से सुबह 3 या 3.30 बजे निकलना पड़ता है और चूँकि वहाँ अंधेरा होता है और चूँकि उनके मालिकों या शासकों द्वारा उनकी सुरक्षा के लिए कोई प्रावधान नहीं किया जाता है, इसलिए यह असामान्य नहीं है कि वे रास्ते में चोरों द्वारा हमला किए जाते हैं और लूटे जाते हैं। लेकिन कहानी का सबसे बुरा हिस्सा अभी आना बाक़ी है। वे बनियों (व्यापारी वर्ग) द्वारा भी शोषित होते हैं, जो आज के शाइलॉक हैं। वे भली-भाँति जानते हैं कि वे (मज़दूर) जिनके पास न तो अन्य दुकानों या कस्बों से बेहतर और सस्ता सामान ख़रीदने के लिए अपेक्षित समय है और न ही ऐसा करने के लिए पर्याप्त पैसा है, उन्हें चाहे जो भी सड़ा हुआ सामान किसी भी दर पर बेचना पड़े, ख़रीदना ही पड़ेगा। इस प्रकार, उनकी लाचारी और ग़रीबी का फायदा उठाकर वे उन्हें सबसे घटिया सामान सबसे ऊँचे दाम पर देते हैं। यह मरे हुए घोड़े पर हाथ मारने जैसा है। गुलामी के मील के पत्थर पार करते हुए उन्हें नहाने का भी समय नहीं मिलता और जब तक वे अपने शौच से मुक्त होते हैं, तब तक वे अपना शरीर और कपड़े धो लेते हैं।

कम से कम 8.30 बजे तक, तब वे अपना खाना पका लेते हैं। कई लोगों को इसके अलावा अपना मक्का भी पीसना पड़ता है, इसका मतलब है कम से कम शाम 7 बजे तक फिर, जैसा कि वे हमेशा जल्दी उठने के भूत से ग्रस्त रहते हैं, वे स्वाभाविक रूप से खाना पकाने, खाने और बर्तन साफ़ करने के बाद बिस्तर पर चले जाते हैं फिर सुबह वे 2 बजे उठते हैं और जैसे ही वे अपने शौच आदि से मुक्त होते हैं, वे अपना खाना पकाना शुरू कर देते हैं। यदि वे परिवार के सदस्य हैं, पुरुष हैं, तो पुरुष सदस्य अपने बच्चों के बाद जब महिलाएँ मकई पीसती हैं और खाना बनाती हैं। खाना बनते ही वे अपनी रोटी को गंदे कपड़े में लपेटकर काम पर निकल पड़ते हैं। इन परिस्थितियों में, उन्हें मुश्किल से ही समय मिलता है, जैसा कि हम पहले भी देख चुके हैं जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं कि कम उम्र के लड़के-लड़कियाँ भी काम पर रखे जाते हैं। वे अपनी प्यास और भूख मिटाने के लिए तरह-तरह के काम करते हैं लेकिन उन्हें वे सुविधाएँ भी नहीं दी जातीं जो जानवरों को भी दी जानी चाहिए। उदाहरण के लिए, गर्भावस्था के दौरान दूध देने वाली गायों की विशेष देखभाल की जाती है और उन्हें विशेष प्रकार का पोषण दिया जाता है अगर कोई पालतू पशु अशक्त या बीमार हो जाता है तो उसे हर तरह की चिकित्सा सहायता दी जाती है लेकिन इन ग़रीब मज़दूरों को ये सुविधाएँ भी नहीं दी जातीं। मातृत्व लाभ की तो बात ही छोड़िए काम करते समय लगी चोटों के कारण अगर वे मर जाएँ या अपने अंग हमेशा के लिए खो दें, तो भी उन्हें कोई मुआवज़ा नहीं दिया जाता। आम तौर पर कोई बोनस नहीं दिया जाता। जब दिया भी जाता है, तो वह कभी भी ग़रीब मज़दूरों की जेब तक नहीं पहुँचता क्योंकि मालिक इस काम के लिए एक मुश्त रक़म तय करके उसका वितरण कर्मचारियों के हाथ में छोड़ देते हैं, जो स्वाभाविक रूप से उसे क्लर्कों, विभागाध्यक्षों और अपने चहेतों में बाँट देते हैं। उनके लिए अलग से अस्पताल भी नहीं हैं और शहर के अस्पताल, जहाँ उन्हें भेजा जाता है या जाना पड़ता है, वे इतने उदासीन हैं कि जब तक डॉक्टर या कंपाउंडर को कुछ न दे दें, तब तक वे उपयोगी दवा नहीं बन सकते। यहाँ तक कि अगर उन्हें वेतन में दोहरी कटौती से बचने के लिए बीमार होने का प्रमाण-पत्र भी लेना पड़े, तो भी उन्हें डॉक्टर

को भुगतान करना ही पड़ता है।बेशक शैतान को भुगतान के बाद एक स्वस्थ आदमी भी प्रमाण-पत्र प्राप्त कर सकता है या इनडोर रोगी बन सकता है।

संक्षेप में, यह उन लोगों की स्थिति है, जिनके मधुर श्रम पर मालिक पलते हैं, कमाते हैं और धन इकट्ठा करते हैं, जिन्हें भगवान ने मनुष्य बनाया है, लेकिन उनके मालिक उन्हें पशुवत जीवन जीने के लिए मजबूर करते हैं। बल्कि, उनके साथ वास्तव में पशुओं जैसा व्यवहार किया जाता है। उन्हें दिए गए हर आदेश के साथ कुछ न कुछ गालियाँ भी दी जाती हैं। उनके द्वारा आत्मसम्मान का हर छोटा-सा प्रदर्शन करने पर उन्हें जूतों या डंडों की मार खानी पड़ती है।

भारतीय राज्यों में कारखानों और मिलों को ऐसी दयनीय और असहनीय परिस्थितियों में भी अपने काम के लिए पर्याप्त श्रमिक मिल जाना इस बात का सकारात्मक प्रमाण है कि भारतीय राज्यों के लोग कभी भी भूख की तृष्णा को संतुष्ट नहीं कर सकते।

क्या हम ऐसी परिस्थितियों में इन लोगों के लिए शिक्षा, सभ्यता और उसकी सुविधाओं की बात कर सकते हैं?

★

अध्याय–17
वर्तमान स्थिति
लोगों की प्रकृति

यहाँ समग्र रूप से जनता की सामान्य प्रकृति पर कुछ भी स्वीकार नहीं किया जाएगा। राज्यों में लोग स्वभाव से अत्यंत शांतिप्रिय और झगड़ालू नहीं होते। वे बहुत मेहनती भी होते हैं। जहाँ तक सहिष्णुता की बात है तो वह अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी है। बेशक राज्यों में, ऐसे कुलों या समुदायों की काफी संख्या है जिन्होंने (उम्र के दिनों में) अपने स्वयं के गणराज्य बनाए थे, जिनमें भील या पल्लव, मेहर, मेव, कोली, शोंडिया, मावले आदि का उल्लेख किया जा सकता है। असम, संयुक्त प्रांत, बंगाल, मद्रास और अन्य ब्रिटिश भारतीय प्रांतों में आज भी कई समुदाय मौजूद हैं जिन्होंने पुराने समय में अपने स्वयं के गणराज्य बनाए थे। उनके आंतरिक संगठन, उनके संस्कार और आदतों में आज भी पिछले गणतंत्र की भावना के निशान मौजूद हैं, बलिदान की भावना, एकता और मरने की इच्छा जो हम उनमें देखते हैं, वह शायद ही कहीं और मिले। आज भी, वे किसी सरकार के आदेशों का पालन नहीं करते हैं, बल्कि अपने स्वयं के बुजुर्गों और मुखियाओं के माध्यम से करते हैं। यही कारण है कि सरकारें हमेशा अपने मुखियाओं और बड़ों को अपने अधीन रखने के लिए रिश्वत और रियायतें देती हैं। कई राज्यों में, केवल इसी कारण से, उन्हें भूमि कर से पूरी तरह छूट दी गई है। ऐसे समुदायों में, भील और ग्रासिया एक महत्वपूर्ण हैं जो राजपूताना की उत्तर पश्चिमी सीमाओं और राजस्थान के पूर्वी हिस्सों में रहते हैं। गुजरात पर गौर करने लायक बात है। पूरा प्रांत पहाड़ी होने के कारण वे एक साथ नहीं रहते। वहाँ दो पहाड़ियों के बीच की हर जगह पर एक ही परिवार रहता है। किसान पहाड़ी के किसी कोने पर अपनी झोपड़ी बना लेता है और दो पहाड़ियों के बीच की ज़मीन को अपना खेत बना लेता है। उस पहाड़ी के पार किसी और परिवार की झोपड़ी और खेत होता है। इस तरह एक गांव 6 से 8 वर्ग मील में फैला होता है। वहाँ के लोग इतने आत्मनिर्भर हैं कि दूसरे प्राँतों के लोग उन्हें देखकर हैरान रह जाते हैं। न तो वे बढ़ई पर निर्भर हैं, न लोहार पर। न उन्हें किसी दर्ज़ी की ज़रूरत है, न

धोबी की, न मोची की और न राजमिस्त्री की। संक्षेप में, प्रत्येक किसान इन सभी कलाओं और शिल्पों को खुद ही जानता है। उन्हें अपनी रक्षा और अपने कामकाज को संचालित करने के लिए अपने अलावा किसी और मशीन या आदमी की ज़रूरत नहीं है। इसलिए जहाँ तक कपड़ों का सवाल है, तो वे दूसरों पर निर्भर हैं। न तो वे कपास उगाना जानते हैं और न ही कपड़े बुनना। दूसरी ओर राज्य उन्हें न तो प्राथमिक शिक्षा देते हैं और न ही सभ्यता के अन्य साधन इसीलिए उनके लिए एक भी स्कूल नहीं है, जबकि उनकी संख्या लाखों में है। इतना ही नहीं, किसी सार्वजनिक कार्यकर्ता, यहाँ तक कि किसी सामाजिक कार्यकर्ता को भी उन्हें पढ़ाने और शिक्षित करने की अनुमति नहीं है। उन्हें जंगली कहा जाता है और उनके साथ जानवरों जैसा व्यवहार किया जाता है। अगर वे बेगार और इस तरह के दूसरे अत्याचारों के खिलाफ़ आवाज़ उठाते हैं, तो उन्हें कीड़ों की तरह मार दिया जाता है। अगर वे अपनी स्थिति सुधारने के लिए आंदोलन करते हैं, तो उन्हें ब्रिटिश सेना द्वारा गोलियों की बौछार झेलनी पड़ती है। उनके छप्पर और गाँव जला दिए जाते हैं। हालांकि धरती लगभग बंजर है और देश पहाड़ी है, फिर भी उन पर बहुत ज़्यादा कर लगाया जाता है और ये सारे अत्याचार उन पर सिर्फ इसलिए किए जाते हैं कि वे फिर से अपना सिर न उठा सकें।

ऐसा लगता है कि उनमें से ज़्यादातर लोग इन अत्याचारों और दमन से घबरा गए हैं, फिर भी अगर कोई गहराई से जाँच करे, तो वह उनके दिलों में असंतोष की भयानक धाराएँ दौड़ती हुई देख सकता है। यही कारण है कि वे फिर से अपना सिर उठाने और अत्याचार का जुआ उतारने का कोई मौका नहीं छोड़ते। लेकिन दुःख की बात यह है कि कोई भी इनके बारे में सोचना भी अपना कर्तव्य नहीं समझता। इसका भी एक कारण है। राज्यों में व्यावहारिक रूप से शिक्षा नहीं है। लगभग सभी राज्यों में, जिनकी आय 10 से 20 लाख के बीच है, केवल एक ही स्कूल है और वह भी राजधानी में। गाँवों में स्कूल नहीं हैं, हालांकि ग्रामीणों को शिक्षा उपकर देने के लिए मजबूर किया जाता है। यहाँ तक कि अगर जनता अपना खुद का स्कूल खोलना चाहती है, तो उसे प्रोत्साहित करने के बजाय बाधा पहुंचाई जाती है। उदाहरण के लिए हम जोधपुर राज्य के शिक्षा विभाग द्वारा जारी एक

विशिष्ट आदेश से कुछ खंड देते हैं :-

1. किसी भी व्यक्ति को मारवाड़ के किसी भी स्कूल में पढ़ाने की अनुमति नहीं दी जाएगी, जब तक कि वह राज्य शिक्षा विभाग के किसी विधिवत अधिकृत अधिकारी को यह संतुष्टि न दे दे कि वह जिस विषय को पढ़ाने का प्रस्ताव कर रहा है, उसे पढ़ाने के लिए योग्य है। आवेदन करने पर या अन्यथा, इस धारा के तहत दी गई योग्यता का प्रमाण पत्र विधिवत हस्ताक्षरित लिखित रूप में दिया जाएगा और जिन विषयों को पढ़ाने के लिए शिक्षक सक्षम है, उनका उसमें उल्लेख किया जाएगा।

2. यदि कोई व्यक्ति मारवाड़ के किसी विद्यालय में अध्यापन करते हुए पाया जाता है, जिसके पास राज्य शिक्षा विभाग के विधिवत् प्राधिकृत अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित लिखित योग्यता प्रमाण-पत्र नहीं है, तो उसे प्रत्येक बार 25 रुपये से अधिक का जुर्माना देना होगा, जब यह साबित हो जाएगा कि उसने अध्यापन किया है।

3. कोई भी व्यक्ति जिसने योग्यता प्रमाण-पत्र प्राप्त कर लिया है, वह योग्यता प्रमाण-पत्र में उल्लिखित विषयों के अलावा कोई अन्य धर्मनिरपेक्ष विषय नहीं पढ़ाएगा। यदि यह साबित हो जाता है कि उसने ऐसा किया है, तो उसे 25 रुपये से अधिक का जुर्माना नहीं देनाहोगा।10/-प्रत्येक अवसर के लिए जिस पर ऐसा करने का प्रावधान किया गया हो।

4. विद्यालय में अध्ययनरत सभी बालकों की उपस्थिति सूची रखी जाएगी तथा उसे अद्यतन रखा जाएगा तथा उसे राज्य के विधिवत् प्राधिकृत अधिकारियों द्वारा हर समय निरीक्षण के लिए खुला रखा जाएगा।

5. जब भी कोई विद्यालय खुलेगा, उसके खुलने की सूचना शिक्षक के नाम के साथ शिक्षा अधीक्षक को तुरन्त भेजी जाएगी। जब कोई विद्यालय बंद हो तो भी उसी प्रकार सूचना भेजी जाएगी।

6. शिक्षक द्वारा शिक्षा विभाग के विधिवत् प्राधिकृत अधिकारियों द्वारा ऐसे मामलों के संबंध में जारी किए गए किसी भी उचित आदेश का पालन करने में विफ़लता शिक्षक को अंत तक उत्तरदायी बनाएगी।

भारत के सैकड़ों राज्यों में इसी प्रकार के आदेश हैं। इसका कारण स्पष्ट है कि वे आम जनता को शिक्षा देना खतरनाक समझते हैं। वे शैतान की तरह उन लोगों को रखने तथा उनके साथ व्यवहार करने में आनंद महसूस करते हैं, जिन्हें ईश्वर तथा प्रकृति ने स्वतंत्र बनाया है तथा मनुष्यों को पशु तथा दास बनाया है।

दूसरी ओर, जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं कि ब्रिटिश भारत और इंग्लैंड के लोग हमेशा से अपने भाग्य के प्रति उदासीन रहे हैं। उनके लिए मानो भारत का एक तिहाई हिस्सा पृथ्वी पर मौजूद ही नहीं है। राज्यों की इस स्थिति को देखते हुए स्वाभाविक रूप से कोई स्वतंत्र नया समाचार पत्र या जनमत नहीं है। ब्रिटिश भारत के समाचार पत्र भी शायद ही कभी अपने पक्ष को उजागर करने के लिए आगे आते हैं और यदि वे बार-बार आग्रह और अनुरोध के बाद ऐसा करते हैं तो वे अपर्याप्त रूप से करते हैं। यहाँ तक कि सबसे महत्वपूर्ण और दुःखद सामग्री को भी समाचार पत्र में अस्पष्ट स्थान दिया जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि कुछ सहानुभूतिपूर्ण समाचार पत्र भी हैं, लेकिन उन्हें अपवादस्वरूप और व्यक्तिगत मामले के रूप में ही समझा जाना चाहिए और इन सबके बावजूद, यदि कुछ विशेष कारणों या परिस्थितियों के कारण कोई आंदोलन होता है, तो राजाओं की चाँदी की गोलियाँ वहाँ मौजूद होती हैं, जिनके सामने कर्तव्य की भावना भी हार मान जाती है।

इन सभी कारणों से, यद्यपि भारतीय राज्यों के लोगों की दृष्टि पर्याप्त रूप से संकीर्ण और स्वार्थी हो गई है, फिर भी वे अपने पक्ष के लिए कष्ट सहने वाले किसी भी व्यक्ति के प्रति अत्यधिक आभारी हैं। उसके लिए वे अपना जीवन भी देने को तैयार हैं।

ईसाई मिशनरियों को इन लोगों की सेवा करने के लिए विशेष सुविधाएँ दी जाती हैं। अपने देश के सार्वजनिक कर्मचारियों के बारे में भारतीय राज्य हमेशा संदिग्ध रहते हैं। बेशक उन्हें मिशनरियों के बारे में कोई संदेह नहीं

है। उन्हें इन लोगों के बीच काम करने की पूरी छूट है। लेकिन हमारे ये योग्य मित्र किसी व्यक्ति की स्थिति सुधारने की अपेक्षा उसका धर्मांतरण करवाने के लिए अधिक प्रयास करते हैं। वे अपने दुःखों और शिक़ायतों के प्रश्नों को लगभग वर्जित कर देते हैं। मूल रूप से वे यूरोपीय देशों से जो पैसा लाते हैं, उसे वे शहरों में भव्य इमारतें और चर्च बनाने में खर्च करते हैं और अगर उनमें से कुछ गाँव पहुँच भी जाते हैं तो वे पीड़ित आत्माओं की मदद करने की बजाय उनके दुःखों का फ़ायदा उठाकर धर्मांतरण के अपने मिशन के पक्ष में सोचते हैं। न ही यह कहा जा सकता है कि वे उनके भाग्य को सुधारने के लिए कुछ नहीं कर सकते। उन्हें बेगार, गुलामी, अमानवीय यातनाएँ और दंड जैसी अनेक कठिनाइयाँ और बर्बरताएँ दी जाती हैं। शैक्षिक प्रावधानों और सुविधाओं का अभाव, राज्य में नशीले पदार्थों का फैलना और इसके परिणामस्वरूप लोगों का मनोबल गिरना, उनके रहने, खाने, कपड़े पहनने, गहने पहनने आदि की स्वतंत्रता पर अनुचित और मनमानी सीमाएं, सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक मामलों में भी भाषण, लेखन, संगठन और कार्रवाई की स्वतंत्रता का अभाव। इसलिए, उनमें से हर कोई अगर चाहे तो इनमें से कोई भी प्रश्न उठा सकता है और इस तरह गरीबों की मदद उद्धारकर्ता, ईसा की भावना से कर सकता है। लेकिन वे ऐसा नहीं करते। यह इस तथ्य के कारण है कि उन्हें आम जनता द्वारा कभी भी सच्ची सहानुभूति और प्यार के साथ स्वीकार नहीं किया जाता है और, हालांकि वे पूरी ऊर्जा और भक्ति के साथ लाखों खर्च करते हैं, फिर भी लाखों मेहनतकश लोगों को, कम से कम भारतीय राज्यों के लोगों को उनसे या उनकी गतिविधियों से कोई लाभ नहीं मिलता है।

★

अध्याय–18
वर्तमान परिस्थितियाँ
भारतीय राज्यों में जागृति

यह भी नहीं कहा जा सकता कि भारतीय राज्यों के लोगों ने अपनी स्थिति सुधारने के लिए कुछ नहीं किया। इसमें कोई संदेह नहीं कि वे 500 से अधिक क्षेत्रों में विभाजित हैं और अधिकतर एक दूसरे से बहुत दूर स्थित हैं, या एक समूह दूसरे से बहुत दूर है, और कई राज्यों में लोगों को पड़ोसी क्षेत्रों के लोगों के साथ मिलकर कुछ भी करने से रोका गया है, उनके लिए शुरू से ही एक संगठन के तहत काम करना लगभग असंभव था। इसलिए शुरू में जो कुछ भी किया गया वह व्यक्तिगत रूप से और अलग-थलग तरीके से किया गया था और जैसा कि स्वाभाविक था, उन्होंने सबसे बर्बर दमन से शिक्षा नहीं ली थी। उदाहरण के लिए, एक सज्जन ने इंदौर राज्य के लोगों की शिकायतों को व्यक्त करने के लिए निकटवर्ती ब्रिटिश क्षेत्र महू कैंटोनमेंट से एक समाचार पत्र शुरू किया। कैंटोनमेंट में राज्य का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं होने के कारण, उन्हें गुप्त तरीक़ों से सताया जाने लगा। कैंटोनमेंट के अधिकारी भी उनके व्यवहार में शामिल थे। परिणाम यह हुआ कि अखबार का प्रकाशन बंद हो गया और संपादक को ग्वालियर क्षेत्र के उज्जैन शहर में शरण लेनी पड़ी। यहां भी उन्हें इंदौर राज्य के बेईमान भाड़े के लोगों ने परेशान किया। उन्होंने उस व्यक्ति से परिचय बनाया और एक दिन उसे अपने साथ रेलवे स्टेशन चलने के लिए राजी कर लिया। वह व्यक्ति अपने नए मित्रों के पीछे-पीछे चल पड़ा, लेकिन रास्ते में उसे संदेह हुआ और उसने लौटने की कोशिश की। इस पर इंदौर राज्य के भाड़े के सैनिकों ने उसे जबरन ले जाने की कोशिश की और जब उसने विरोध किया तो उसे पीट-पीटकर मार डाला गया।आखिरकार मामला अदालत में गया और ग्वालियर राज्य द्वारा पूरे क्षेत्र पर बहुत दबाव डाला गया, जिससे जो आरोपी भाग नहीं पाए या फिर से गिरफ़्तार हो गए, उन्हें सजा मिली। इसी तरह, श्री लक्ष्मण राव को भी अपना प्रकाशन बंद करना पड़ा और अजमेर छोड़ना पड़ा, क्योंकि जयपुर राज्य के भाड़े के सैनिकों ने स्थानीय भाड़े के सैनिकों के अत्याचारों का समर्थन किया था, जिनके खिलाफ़ उन्होंने लिखा और आंदोलन किया। पंडित जगदीश का मामला भी उल्लेखनीय है। कैसे अजमेर सरकार और किशनगढ़ राज्य ने मिलकर उन्हें सताया, कैसे उन पर लगाए गए सभी आरोप और जिनके आधार पर उनके खिलाफ़ वारंट और पुरस्कार जारी किए गए थे, विफल हो गए, कैसे उन्हें अजमेर

से ब्रिटिश क्षेत्र में प्रत्यर्पित किया गया और कैसे बाद में मुझे सभी आरोपों से बरी कर दिया गया, जिसमें पुलिस हिरासत से भागने के लिए पाँच साल की क़ैद की सज़ा दी गई थी और अंत में, कैसे उन्हें जेल में मरना पड़ा, यह एक ऐसी कहानी है जिसे याद करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं और यह उनका शिक्षित सार्वजनिक कर्मचारियों के साथ व्यवहार था। जब भी अशिक्षित जनता ने अपना सिर उठाने की कोशिश की, तो उन्हें बेरहमी से दबा दिया गया, जितना कम कहा जाए उतना अच्छा है।

संक्षेप में लोगों ने अपनी स्थिति सुधारने की कोशिश की, लेकिन लगभग हर बार उन्हें ब्रिटिश सरकार और भारतीय राज्य की संयुक्त ताकतों द्वारा बेरहमी से दबा दिया गया। नहीं, शायद ही कोई ऐसा अंधेरा तरीका हो जिसका सहारा न लिया गया हो और कोई ऐसा कानून न हो जिसका उल्लंघन न किया गया हो, ताकि उनके नापाक और अपवित्र उद्देश्यों को पूरा किया जा सके। ब्रिटिश भारत भी उनके प्रति इतना उदासीन था कि उसके अखबारों में उन पर किए गए सबसे दुःखद अत्याचारों का भी उल्लेख नहीं था। और बेचारा ब्रिटिश भारत चाहे तो क्या कर सकता था। उसे अपनी समस्याओं का सामना करना था और उन्हें हल करना था। इसके अलावा, वह भारतीय राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप करने के लिए बहुत कमज़ोर और समयोचित था। यहाँ तक कि 1914 के अंत तक जब लेखक ने सामान्य रूप से भारतीय राज्यों के प्रश्न को अपने हाथों में लिया, तब भी ब्रिटिश भारत के अखबार उनके कुशासन के खिलाफ़ कुछ भी लिखने से कतराते थे, और लोग काग़ज़ी आंदोलन के विचार से ही डर से काँप उठते थे और यह बहुत ही कठिनाई से नहीं हुआ कि एक या दो अखबारों को भारतीय राज्यों के लोगों के मुद्दों को उठाने के लिए राजी किया गया, और यद्यपि जब उन्होंने अजमेर में अपना मुख्यालय स्थापित किया तो कई राज्यों के किसानों की संगठित शक्ति उनके पीछे थी फिर भी कोई भी नीच और भूमिगत तरीक़ा नहीं छोड़ा गया था, जो उन्हें और उनके संगठनों को कुचलने के लिए इस्तेमाल नहीं किया गया था। वह चाहते थे कि वे इन व्यक्तिगत उल्लेखों से पूरी तरह से बच सकें लेकिन उन्होंने महसूस किया कि अगर उन्हें यह उजागर करने का अपना कर्तव्य निभाना था कि कैसे नौकरशाही भारतीय राज्यों में अत्याचार को बनाए रखने और उसे कायम रखने के लिए अपने स्वयं के कानूनों को रौंदती है, और कैसे संसद और इंग्लैंड के लोगों के नाम पर वह उस चीज के माध्यम से बर्बरता का प्रचार और संरक्षण करती है, जिसकी प्रामाणिकता में उन्हें कोई संदेह नहीं

है, तो उन्हें कम से कम एक घटना या अपने स्वयं के अनुभव का उल्लेख करना चाहिए।

यह 1922 की बात है जब सरकार ने कुछ राज्यों के किसानों की ताक़त और संगठन से घबराकर उन्हें और उनके सहायकों को कुचलने का फ़ैसला किया। एक षड्यंत्र रचा गया और संबंधित राज्यों और अजमेर (एक ब्रिटिश क्षेत्र) के पुलिस अधिकारियों की बैठकें आयोजित की गईं ताकि हमारे आंदोलनों और संगठनों के बारे में पूरी जानकारी मिल सके और उन्हें हमारे काग़ज़ात तक पहुँच की आवश्यकता महसूस हुई लेकिन ऐसा नहीं किया गया। उनके लिए यह एक कठिन कार्य था। उन्होंने स्थानीय न्यायालय का दरवाज़ा खटखटाया और इस बहाने से तलाशी वारंट जारी करवा लिया कि हम कुछ देशद्रोही सामग्री ज़ब्त करने जा रहे हैं, तलाशी प्रभावित हुई और लगभग दो गाड़ी भर काग़ज़ और पांडुलिपियाँ पुलिस हिरासत में ले ली गईं। कानून के अनुसार वे इस तरह से तलाशी ली गई और कब्ज़े में ली गई किसी भी चीज़ को तभी हटा सकते थे जब उन्होंने सामग्री की पूरी सूची तैयार कर ली हो और दो प्रत्यक्षदर्शियों और मालिक से हस्ताक्षर करवा लिए हों लेकिन ऐसा कुछ नहीं किया गया। हमें उन बक्सों को भी सील करने की अनुमति नहीं दी गई जिनमें काग़ज़ात बंद थे फिर पड़ोसी राज्यों के लगभग सभी पुलिस प्रतिनिधियों को बुलाया गया और उन्हें अपने अपवित्र उद्देश्य को पूरा करने के लिए हमारे काग़ज़ात को स्वतंत्र रूप से लूटने की अनुमति दी गई और जब हमारे प्रभावी विरोध के कारण उसे उस असंवैधानिक प्रक्रिया को छोड़ना पड़ा और जब संसद और भारतीय विधानमंडल में घटना के बारे में खोजी प्रश्न पूछे गए, तो उसने किसी को सवालों के झूठे जवाब देकर और दूसरों को टालमटोल करके अपनी खाल बचाने की कोशिश की। संक्षेप में कहें तो, एक लम्बे और कटु संघर्ष के बाद ही ब्रिटिश शासन ने भारतीय मज़दूरों के कुछ संगठनों को अस्तित्व में आने दिया। ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत भी राज्यों का अस्तित्व बना रहा, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि उसके बाद सार्वजनिक कार्य को अपनी मनमानी करने की अनुमति दे दी गई। इसकी दुष्टतापूर्ण गतिविधियाँ आज भी जारी हैं। उदाहरण के लिए बिजोलिया के बंदोबस्त का उदाहरण दिया जा सकता है। यह श्री आर.ई. हॉलैंड की मध्यस्थता से राज्य और किसानों के बीच हुआ था, जो उस समय राजपूताना के गवर्नर जनरल के प्रतिनिधि थे लेकिन संगठित किसानों की शक्ति के सामने उन्हें झुकना पड़ा और लोगों को अपने बच्चों की शिक्षा पर पूर्ण नियंत्रण देना पड़ा तथा नवगठित ग्राम पंचायतों को मान्यता देनी

पड़ी और बेगार सहित लगभग सत्तर दमनकारी करों को समाप्त करना पड़ा, लेकिन वे इसका पालन करने के लिए तैयार नहीं थे। इसीलिए, जैसे ही श्री हॉलैंड सेवानिवृत्त हुए और राज्य के अधिकारियों की साज़िशों ने किसानों के संगठनों को कमजोर करने में सफलता प्राप्त की, गवर्नर जनरल के वर्तमान प्रतिनिधि ने उदयपुर राज्य को अपने समझौते की शर्तों से पीछे हटने की अनुमति दे दी। अन्य प्रांतों के राज्यों की स्थिति भी ऐसी ही है। काठियावाड़ के राज्यों के लोग अपना राजनीतिक सम्मेलन करते हैं, लेकिन वे किसी भी भारतीय राज्य के खिलाफ मुँह नहीं खोल सकते। उन राज्यों के सार्वजनिक कर्मचारियों को भी अपने कार्यालय ब्रिटिश क्षेत्रों में ही रखने पड़ते हैं और वहीं से अपने समाचार-पत्र प्रकाशित करने पड़ते हैं। उत्तरी भारत के लगभग सभी राज्यों की स्थिति ऐसी ही है। हैदराबाद, मिराज आदि जैसे अधिकांश राज्यों के लोगों को अपने राजनीतिक सम्मेलन लगभग हमेशा ब्रिटिश आयरिश क्षेत्रों में ही करने पड़ते हैं। इतना ही नहीं, इन सम्मेलनों में भाग लेने वालों को भी राज्य की नाराजगी का खामियाजा भुगतना पड़ता है।

★

अध्याय–19
नए युद्धाभ्यास

हम पहले ही कह चुके हैं कि कैसे, मोंटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों के रूप में ठंडे पानी की बौछार करके असंतोष को शांत करने में ब्रिटिश सरकार की विफ़लता और हिंदुओं और मुसलमानों को हमेशा के लिए विभाजित रखने में अपनी सफ़लता के बारे में असहयोग आंदोलन से मोहभंग होने के बाद, इसके युद्धाभ्यास ने बिल्कुल अलग मोड़ ले लिया। इस समय तक उन्होंने राज्यों को नई राजनीतिक धाराओं से पूरी तरह से अलग रखा था। लेकिन अब इसने उन्हें इसमें भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया। विधान सभा में भी, जब आगे के सुधारों की मांग करने वाला प्रस्ताव आया, तो सरकार की ओर से कहा गया, 'पहला सवाल यह था कि क्या भारतीय राजा आज अपने रिश्तेदारों के संबंध में भारतीय विधानमंडल को ज़िम्मेदारी का हस्तांतरण स्वीकार करेंगे* क्योंकि राजकुमार खुद सत्ता के हाथों में केवल औजार थे और हैं। इसीलिए, जब 1920-21 में लेखक ने कुछ अन्य सार्वजनिक कार्यकर्ताओं और भारतीय राज्यों के मित्रों के साथ मिलकर संधियों को वर्तमान स्थिति और परिस्थितियों के अनुरूप संशोधित करने का प्रश्न उठाया, यह बीकानेर के वर्तमान महाराजा थे जिन्होंने अपने घर की छत से सबसे पहले यह घोषणा की कि 'हम संधियों में किसी भी तरह का कोई परिवर्तन नहीं चाहते हैं। हम यथास्थिति चाहते हैं।' अब वे इस देश की भावी राजनीति में राजाओं की चरम स्थिति और स्थान निर्धारित करने का प्रश्न उठाने वाले पहले व्यक्ति हैं। दूसरी ओर, भारत सरकार ने सर फ्रेडरिक व्हाइट को संघ पर एक पुस्तक लिखने के लिए नियुक्त किया। सर व्हाइट ने यह किया और यह साबित करने के लिए बहुत मेहनत की कि प्रशासन और संविधान में एकरूपता संघ के गठन के लिए कोई शर्त नहीं थी।

इस ओर के राजाओं ने भी बीकानेर में कुछ महाराजाओं और प्रतिभाशाली मंत्रियों का सम्मेलन बुलाया और स्थिति पर चर्चा की। उसमें तैयार किए गए ज्ञापनों में से उनकी कुछ राय नीचे दी गई है :-

निम्नलिखित परिस्थितियों को देखते हुए जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय राज्यों के हितों को प्रभावित करती हैं। इस विषय पर निम्नलिखित सुझाव दिए गए हैंरू-

1. वायसराय परिषद में भारतीय राज्यों में से चुने गए एक सदस्य को शामिल किया जाना। इससे भारतीय राज्यों के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने का अवसर मिलेगा, जबकि उनसे संबंधित प्रशासन के मामलों पर वायसराय और उनकी परिषद द्वारा विचार किया जा रहा है, जैसे रक्षा और विदेशी संबंध और अखिल भारतीय महत्व के प्रश्न, जैसे मुद्रा, शुल्क, डाक और टेलीग्राफ।

2. भारतीय निकायों राज्य परिषद और विधान सभा में या केवल राज्य परिषद में भारतीय राज्यों का प्रतिनिधित्व। इससे टैरिफ, राजकोषीय कानून, मुद्रा और डाक-तार जैसे भारतीय महत्व के कानून के मामलों में भारतीय राज्यों को प्रभावित करने वाले प्रश्नों पर चर्चा का अवसर मिलेगा, जबकि कानून अभी भी प्रारंभिक चरण में है।

3. ब्रिटिश भारतीय प्रांतों और भारतीय राज्यों के प्रतिनिधियों से युक्त एक नया निकाय, जो लीग ऑफ नेशंस के समान कुछ सिद्धांतों पर गठित किया जाएगा। यह एक ढीला-ढाला और लचीला संगठन होगा, जिसमें ब्रिटिश प्रांतों और भारतीय राज्यों के बीच उल्लिखित प्रकार के अखिल भारतीय महत्व के मामलों पर खुली चर्चा और बेहतर समझ के लिए जगह होगी, लेकिन बाध्यकारी बल के बिना, जब तक कि बाद में और स्वेच्छा से राज्यों और प्रांतों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुपस्थित न हों। इस तरह की चर्चा विभिन्न सरकारों के लिए ऐसे मामलों पर अंतिम निर्णय लेने में लाभदायक हो सकती है।

4. भारतीय राज्यों के प्रतिनिधियों से युक्त निकाय की संस्था, जिसके माध्यम से विशेष रूप से भारतीय राज्यों को प्रभावित करने वाले मामले और साथ ही अखिल भारतीय महत्व के मामले, जो राज्यों और प्रांतों को आम तौर पर छूते हैं, सामान्य विधायी निकायों द्वारा निपटाए जाने से पहले या बाद में पारित होंगे। यह तीसरा सदन होगा और भारत सरकार के समक्ष उल्लिखित

प्रश्नों पर भारतीय राज्यों का दृष्टिकोण रखेगा।

5. विशेष बोर्ड और जांच आयोगों में भारतीय राज्यों का प्रतिनिधित्व। यह वांछनीय है कि भारतीय राज्यों को टैरिफ बोर्ड और भारत में कार्यरत जांच आयोगों (रॉयल कमीशन सहित) में प्रतिनिधित्व की अनुमति दी जानी चाहिए, सिवाय इसके कि जब ऐसे आयोग पूरी तरहसे ब्रिटिश भारतीय प्रांतों के आंतरिक प्रशासन से संबंधित हों।

6. जर्मन जोलवेरिन के महृडल पर एक सीमा शुल्क संघ का गठन जिसमें ब्रिटिश भारतीय प्रांतों और भारतीय राज्यों दोनों के प्रतिनिधि शामिल हों। यह भारतीय राज्य द्वारा सही तरीके से दावा किए गए सीमा शुल्क राजस्व के हिस्से के संबंध में बहुचर्चित प्रश्न का समाधान प्रदान कर सकता है, आर्थिक विकास के विशेष सामान्य प्रश्नों में संरक्षण बनाम मुक्त व्यापार और अन्य समान समस्याएं। ऐसे संघ को कानून बनाने का काम सौंपा जा सकता है। टैरिफ, डाक और टेलीग्राफ तथा राजस्व के अन्य स्रोतों के मामलों में, जहां सेवाएंकेंद्रीय सरकार द्वारा साझा रूप से प्रदान की जाती हैं, भारतीय राज्य भी उस राजस्व में एक बड़ा हिस्सा देते हैं।

7.सीमा शुल्क राजस्व तथा भारतीय राज्यों में उपभोग की जाने वाली वस्तुओं पर अन्य अप्रत्यक्ष करों के तहत भारत सरकार द्वारा प्राप्त हिस्से को देखते हुए, भारतीय राज्यों और भारत सरकार के बीच वित्तीय संबंधों के स्पष्ट औचित्य पर जोर देना भी आवश्यकहै, जहां तक यह पंद्रह प्रतिशत योजना के तहत रक्षा पर सब्सिडी और व्यय से संबंधित है।

भारतीय राज्यों की स्थिति

यदि इस नोट में उल्लिखित योजना को अपनाया जाता है, तो भारतीय राज्यों की स्थिति कहीं अधिक महत्वपूर्ण और सम्मानजनक हो जाएगी, जो उनके तात्कालिक हितों के अनुरूप होगी।

जहाँ तक ब्रिटिश भारत और भारतीय राज्यों को साझा रूप से प्रभावित करने वाले प्रश्नों का संबंध है, ऊपर दिए गए प्रस्ताव राज्यों को साम्राज्य-वादी नीति को आकार देने में एक प्रभावी आवाज़ देंगे, जिसे वे वर्तमान में अपना रहे हैं। शाही विधानमंडल में भारतीय राज्यों के प्रतिनिधि यह सुनिश्चित करेंगे कि शाही प्रश्नों पर राज्यों सहित सभी दृष्टिकोणों से चर्चा

की जाए।

ऊपर उल्लिखित योजना, यह विश्वासपूर्वक अपेक्षित है, वर्तमान स्थिति की सभी उचित आवश्यकताओं को पूरा करेगी और धीरे-धीरे ग्रेट ब्रिटेन के अधीन भारतीय राज्यों और ब्रिटिश प्रांतों के संघ के आदर्श को अच्छे समय में पूरा करेगी।

'अंत में, यह जोड़ना आवश्यक है कि भारत में उत्तरदायी सरकार का अंतिम समाधान, जैसा कि वास्तव में, आम तौर पर मान्यता प्राप्त है, एक महान अखिल भारतीय संघ की दिशा में निहित होगा, जिसमें स्वदेशी शासन के अधीन क्षेत्र और वर्तमान में ब्रिटिश सरकार द्वारा सीधे प्रशासित प्रांत शामिल होंगे। प्रत्येक ऐसा क्षेत्र या प्रांत संभवतः संघ के भीतर एक घटक राज्य होगा, चाहे उस संघीय सरकार का प्रकार कुछ भी हो और अपनी आंतरिक नीति और प्रशासन पर पूर्ण नियंत्रण बनाए रखते हुए, संघ को प्रभावित करने वाले सभी मामलों के निर्धारण में अपने महत्व के अनुरूप एक आवाज़ रखेगा। यह प्रश्न कि भारतीय राज्यों को संघीय संसद के दोनों सदनों में प्रतिनिधित्व मांगना चाहिए या नहीं, एक विस्तृत मामला है, जिसका निर्णय तब किया जाना है जब 1928 की जांच के बाद भारत सरकार का पुनर्गठन किया जाएगा। उस जांच में, भारतीय राज्यों को एक भारतीय संघीय संसद के लिए दबाव डालना चाहिए जिसमें दोनों सदनों काफी विस्तार हो और उन्हें दोनों सदनों में अपने आनुपातिक प्रतिनिधित्व के लिए भी अनुरोध करना चाहिए।

परिशिष्ट 1

संभावित भारतीय संघ में भारतीय राज्यों की स्थिति पर एक मसौदा पत्र का सारांश।

परामर्श के साधन

अंतिम निर्णय वाली एक विधायी निकाय होना चाहिए। क्या इसमें राज्य को शामिल किया जाना चाहिए या उन्हें बाहर रखा जाना चाहिए? सबसे सीधा रास्ता यह प्रतीत होता है कि उनसे लगाए जाने वाले कराधान के साथ प्रतिनिधित्व को जाने दिया जाए। अभी तक दिया गया सबसे अच्छा सुझाव यह प्रतीत होता है कि कार्यों को सीमित किया जाए और राज्य परिषद के

गठन को बढ़ाया जाए।

परिशिष्ट 2.

राजतंत्र विशेषज्ञ डॉ. सर ब्रजेंद्र नाथ सील, केटी., डी.एस.सी., पीएच. डी. द्वारा ०2. अगस्त 1923 को अनौपचारिक सम्मेलन में पढ़े गए संक्षिप्त नोट्स भारत सरकार को दो-तरफा स्वरूप में माना जाना चाहिए : -

1. जहाँ तक यह भारतीय राज्यों के संबंध में अधिपत्य शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है।

2. जहाँ तक यह केंद्रीय और प्रांतीय विधायिकाओं के संबंध में केंद्रीय कार्यकारी सरकार है। इस बाद के पहलू में, सरकार को भारत के लोगों के प्रति अधिक से अधिक ज़िम्मेदार बनना है।

एक भारतीय राज्य का भी दोहरा स्वरूप है, अर्थात् शासक और उसकी प्रजा। यहां भी कुछ राज्य प्रतिनिधि सरकार की विकासशील संस्थाएं हैं।

अब भारतीय राज्यों की एक अर्ध-संप्रभु स्थिति है, जबकि आंतरिक मामलों के संबंध में उनके पास संप्रभुता है, विदेशी या अंतर-राज्य संबंधों के क्षेत्र में उनका कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है और संधियों या समझौतों के तहत आंतरिक संप्रभुता भी सीमित हो सकती है।

(1) भारत सरकार के संविधान में आमूलचूल परिवर्तन के साथ, अधिपत्य ब्रिटिश सत्ता का प्रतिनिधित्व करने वाली भारत सरकार के भारतीय राज्यों के साथ संबंध भी उदार हो सकते हैं, दूसरे शब्दों में, अधिपत्य सत्ता के अधिकारों को आधुनिक राजनीतिक विचारों और स्थितियों के अनुसार समायोजित और अपनाया जा सकता है।

(2) इसके बाद हम भारतीय राज्यों के भारत सरकार या भारत के साथ संबंधों पर विचार कर सकते हैं, जिसमें कार्यपालिका और साहित्य शामिल हैं। यहाँ ध्यान में रखने वाली बुनियादी बात यह है कि भारत सरकार और भारतीय राज्य दोनों ही लोगों के प्रति अंतिम ज़िम्मेदारी के साथ चरित्र में अधिक से अधिक प्रतिनिधि बन रहे हैं। इसलिए बुनियादी सवाल यह है कि क्या हमें राष्ट्र संघ योजना पर एक संघ की ओर बढ़ना चाहिए या उपलब्ध कई योजनाओं में से किसी एक पर एक संघ की ओर बढ़ना चाहिए,

चाहे वह उत्तरी अमेरिकी कनाडाई, दक्षिण अफ्रीकी या अहस्ट्रेलियाई हो।

अब जहाँ तक ब्रिटिश भारतीय प्रांतों को चिंता है कि उन्हें एक संघ की ओर बढ़ना चाहिए। यह एक विवादास्पद प्रश्न है कि क्या संघ एक मिश्रित सामान्य संपत्ति प्रकार का होना चाहिए जिसमें केंद्रीय सरकार के लिए छोटे संशोधनात्मक और अवशिष्ट अधिकार हों, या दूसरी ओर, एक केंद्रीकृत या एकात्मक प्रकार का होना चाहिए जिसमें काफी संशोधनात्मक और अवशिष्ट अधिकार हों। लेकिन इस बात में कोई उचित संदेह नहीं है कि एक संघ आवश्यक है।

लेकिन यह प्रकार ब्रिटिश भारतीय प्रांतों की ज़रूरतों के अनुकूल होगा। इन भारतीय प्रांतों के लिए, एक केंद्रीकृत प्रकार के पक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है। विगत भारतीय इतिहास हमेशा एक केंद्रीय साम्राज्य के लक्ष्य की ओर बढ़ा है, लेकिन इस उपमहाद्वीप में शामिल लोगों के विशाल और विविध समूहों के कारण यह हमेशा टूट गया है। मेरा मानना है कि भारत की ऐतिहासिक और भौतिक स्थितियों में एकरूपता नहीं, बल्कि विविधता में एकता की आवश्यकता है, और एक मिश्रित राष्ट्रमंडल प्रकार का संघ अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि संघीय सरकार रक्षा, सीमा शुल्क, परिवहन व्यापार अधिकार और कंपनी कानून, अंतरराज्यीय या अंतर्राष्ट्रीय कानून मुद्रा और विनिमय की समस्याओं से चिंतित है।

दीवान बहादुर, के.एस. चंद्रशेखर अय्यर बी.ए., बी.एल. द्वारा नोट्स जिस दिशा में हम जाने के लिए बाध्य हैं, उसमें एक दूरगामी कदम के रूप में, तथा साथ ही समय के प्रश्नों से निपटने के लिए एक उचित नीतिगत पद्धति की पेशकश करते हुए, मैं दिल्ली में मुख्यालय के साथ एक अखिल भारतीय सम्मेलन (या स्थायी समिति) की स्थापना की वकालत करूंगा,जिसमें बड़े भारतीय राज्यों का व्यक्तिगत रूप से प्रतिनिधित्व होगा तथा छोटे राज्यों का सुविधाजनक समूहों में, साथ ही ब्रिटिश भारत के विभिन्न प्रमुख प्रांतों तथा भारत सरकार के साथ शाही सरकार के रूप में प्रतिनिधित्व होगा। इस तरह भारत में सभी जिम्मेदार प्रशासन सम्मेलन में विधिवत प्रतिनिधित्व करेंगे, जो बहुत महत्वपूर्ण मुद्दा है। राज्यों के समूह के प्रत्येक राज्य तथा प्रत्येक प्रांत को एक एकीकृत इकाई के रूप में देखा जाएगा

तथा विचार के लिए आने वाले सभी प्रश्नों पर, उनसे एक स्वर में बोलने की अपेक्षा की जाएगी। किसी लोकप्रिय तत्व के लिए या किसी दिए गए तृतीयक के भीतर अन्य व्यक्तिगत हितों के लिए अलग प्रतिनिधित्व का विचार, सम्मेलन को सौंपे जाने वाले भाग की हमारी अवधारणा से अलग है। प्रतिनिधियों को, निश्चित रूप से, सावधानी से चुना जाएगा और आम तौर पर आवश्यक योग्यता, अनुभव और ज्ञान रखने वाले राजनेता, प्रशासक या प्रचारक होंगे, और संवैधानिक और वित्तीय सलाहकारों और सचिवों के एक ब्यूरो द्वारा सहायता प्रदान की जाएगी।

उपर्युक्त से पाठकों को यह स्पष्ट हो जाएगा कि उस समय राजकुमार एक प्रकार का संघ बनाकर ब्रिटिश भारत के साथ खुद को समायोजित करने के लिए अधिक इच्छुक थे। हालाँकि वे निरंकुशता के आदी थे, वे अपनी शक्तियों से अलग होना पसंद नहीं करते थे, फिर भी अब वे महसूस कर रहे थे कि अगर उन्हें वास्तव में अपनी योजनाओं में सफल होना है तो उन्हें अपने आंतरिक प्रशासन में सुधार करना होगा। वे इसके लिए तैयार भी थे, क्योंकि उन्हें लग रहा था कि संघ को सफल बनाने की जिम्मेदारी किसी बाहरी एजेंसी की सहायता से ज्यादा भारतीय राज्यों और भारत-ब्रिटिश सरकार के कंधों और सहयोग पर टिकी हुई है। लेकिन इस मनोवैज्ञानिक आंदोलन के समय ही एक अंग्रेज सर चार्ल्स टाडहंटर, जो उस समय महाराजा म्युनिसिपल के निजी सचिव थे, ने मंच पर आकर एक नोट के रूप में विवाद का मुद्दा उठाया, जिसके निम्नलिखित अंश लिए गए हैं : -

संघ के सामान्य अनिवार्य तत्व निम्नलिखित हैं :- घटक राज्यों के राज्य मामलों में स्वायत्तता का संरक्षण।'' कारखाने के कानून, महिलाओं और बच्चों के श्रम रोजगार के घंटे और प्रवास जैसे मामलों के संबंध में श्रम के उत्पादन के लिए आम कार्रवाई।

शराब और नशीली दवाओं की आदतों और अनैतिक व्यापारों पर प्रतिबंध के संबंध में आम कार्रवाई (यह तुलनात्मक रूप से एक नई घटना है)।

स्वायत्तता स्वायत्तता की दिशा में प्रांतों की प्रगति का मामला उनके और भारत सरकार के बीच का मामला है।

संधि द्वारा राज्यों की स्वायत्तता प्रदान की गई है, तथा इसके संबंध में उठने

वाले प्रश्न उत्तराधिकार, कुशासन के मामले, मध्यस्थता न्यायालय तथा जांच आयोग जैसे मामलों से संबंधित हैं। इस संबंध में वर्तमान में जिस मुख्य बिंदु पर जोर दिया जाना चाहिए, वह यह है कि राज्यों की संधियाँ ब्रिटिश सरकार के साथ हैं तथा भारत सरकार के बढ़ते लोकतंत्रीकरण के मद्देनजर, इस बात पर जोर देना आवश्यक है कि ऐसे मामलों में लेन-देन केवल ब्रिटिश संसद तथा महामहिम राजा सम्राट के प्रति उत्तरदायी व्यक्तियों के साथ किया जाना चाहिए।

इससे चर्चा का रुख पूरी तरह बदल गया, शरारती सुझाव का जहर काम करने लगा। अब राजकुमारों ने ब्रिटिश भारत के साथ निकट आने तथा सहयोग करने के बजाय, सीधे क्राउन के साथ संबंध स्थापित करके अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के बारे में सोचना शुरू कर दिया। इसमें न केवल उन्हें समान दर्जा देने का प्रलोभन था, बल्कि ब्रिटिश भारत में आने वाले लोकतंत्र के प्रभाव से खुद को अलग रखना भी था, जिससे उन्हें शुरू से ही डरना सिखाया गया था, और अपने आंतरिक प्रशासन में सुधार करके अपनी निरंकुश शक्तियों को छोड़ने के अप्रिय व्यवसाय से खुद को बचाना था। सरकार ने भी राजकुमारों, मंत्रियों, निवासियों और राजनीतिक एजेंटों का एक संयुक्त सम्मेलन आयोजित किया, जो शिमला में मिले। इस सम्मेलन में क्या हुआ और इसने उपर्युक्त शरारती सिद्धांत को कैसे पोषित और पोषित किया, यह बताने की आवश्यकता नहीं है? यह कहना पर्याप्त है कि उस क्षण से राजकुमारों की मानसिकता पूरी तरह से बदल गई थी। अब राष्ट्रवादी भारत वर्जित था, और उनके विश्वास का एकमात्र साधन तपे हुए नौकरशाहों और उनके गुर्गों को दिया गया था। सर विलियम्स और कर्नल हास्कर जैसे कट्टरपंथियों का एक प्रतिनिधिमंडल था। इंग्लैंड भेजा गया। उनके मामले को तैयार करने और पेश करने के लिए चुना गया वकील भी एक अंग्रेज था। फिर इन सब के परिणामस्वरूप, इन सभी पूर्व-नियोजित योजनाओं और योजनाओं को कानूनी रूप देने के लिए, बटलर समिति की नियुक्ति के लिए निम्नलिखित घोषणा की गई।

राज्य सचिव द्वारा एक समिति नियुक्त करने का निर्णय लिया गया है जो सर्वोच्च सरकार और भारतीय राज्यों के बीच संबंधों पर रिपोर्ट करेगी,

जिसमें संधियों, अनुबंधों और सनदा, और अन्य कारणों से उत्पन्न अधिकारों और दायित्वों का विशेष संदर्भ होगा। दूसरा, ब्रिटिश भारत और राज्य के बीच वित्तीय और आर्थिक संबंधों की जांच करना और तीसरा, कोई भी सिफ़ारिश करना जो वे उनके अधिक संतोषजनक समायोजन के लिए वांछनीय या आवश्यक समझ सकते हैं। समिति इस प्रकार से गठित होगी :- अध्यक्ष महामहिम सर हरकोर्ट बटलर, बर्मा के गवर्नर, सदस्य - माननीय सिडनी पील और डब्ल्यूएस होल्ड्सवर्थ, अंग्रेजी कानून में केसी वेनेरियन प्रोफेसर।

* तत्कालीन गृह सदस्य बीर मैल्कम हैली का भाषण देखें, जो उन्होंने संवैधानिक अग्रिम पर श्री रंगाचारी के प्रस्ताव पर सरकार के रुख को स्पष्ट करने के लिए दिया था।

अध्याय–20
नवीनतम युद्धाभ्यास
लोकप्रियराज

राजकुमारों की इन गतिविधियों ने स्वाभाविक रूप से लोगों के मन में आशंकाओं को जन्म दिया। वे परेशान हो गए। लेकिन अपने राज्यों के भीतर वे अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए अपने होंठ भी नहीं खोल सकते थे। और इसलिए अंततः उन्होंने स्थिति पर विचार करने के लिए ब्रिटिश भारतीय क्षेत्र में कहीं अपना 'अखिल भारतीय राज्य जन सम्मेलन आयोजित करने का संकल्प लिया। अंततः स्थान चुना गया। यह बंबई था, जहाँ 16 और 17 दिसंबर को बहुत उत्साह के दृश्यों के बीच और असाधारण सफलता के साथ यह सम्मेलन हुआ।

सम्मेलन कई दृष्टिकोणों से बहुत महत्वपूर्ण था। साथ ही, यह भारतीय राज्य लोगों के जागरण के इतिहास में एक मील का पत्थर था। सबसे पहले, माहौल किसी भी अन्य सम्मेलन के प्रभाव से पूरी तरह मुक्त था, जो पहले भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ-साथ मिलते थे। यद्यपि यह स्थान अनेक भारतीय राज्यों से बहुत दूर स्थित था तथा इसकी तैयारियों और प्रचार में बहुत कम समय और ऊर्जा लगाई गई थी, फिर भी इसे जो सफलता मिली वह अद्वितीय थी। इसमें 80 से अधिक बड़ी भारतीय रियासतों का प्रतिनिधित्व था। प्रतिनिधियों में भी सभी वर्ग और विचारधारा के लोग शामिल थे।एक ओर जहाँ प्रतिनिधियों में धनी मारवाड़ी, कच्छी, काठी आदि तीन लोग थे, वहीं दूसरी ओर बड़ौदा के राजकुमार धैर्यशील राव के साथ-साथ भील, किसान और मजदूरों के प्रतिनिधि भी बैठे थे। ब्रिटिश भारत के प्रमुख सार्वजनिक व्यक्ति और राजनीतिज्ञ भी सम्मेलन में उपस्थित थे, जिनमें सर पुरुषोत्तम दास ठाकुरदास, सर फिरोज सेठना, सर लालोभाई, समालदास, प्रो. के.टी. शाह, सैयद अब्दुल्ला ब्रेलवे, संपादक 'बॉम्बे क्रॉनिकल' और आतिया बेगम के नाम उल्लेखनीय हैं। राजकोट विधान सभा के निर्वाचित अध्यक्ष श्री गोवर्धनदास लाधाभाई और बड़ौदा के डॉ. सुमंत मेहता तथा लेबर सांसद श्री एफ. ब्रॉकवे भी उपस्थित थे। दीवान बहादुर रामचंद्र राव, जो पहले भारतीय विधानसभा के उप-अध्यक्ष थे, ने

अध्यक्षता की। दो दिनों के विचार-विमर्श के बाद, सम्मेलन ने अन्य बातों के अलावा निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किए :-

यह सम्मेलन घोषणा करता है कि भारतीय राज्यों के लोगों को अपनी सरकार के स्वरूप और चरित्र को निर्धारित करने और उसमें ऐसे परिवर्तन लाने का अंतर्निहित अधिकार है, जिन्हें वे उचित समझें।यह सम्मेलन राज्यों के शासकों से आग्रह करता है :-

(क) स्थानीय स्वशासन के क्षेत्र में तथा सामान्य प्रशासन के विधान, प्रशासन और नियंत्रण के लिए निर्वाचित आधार पर राज्यों में प्रतिनिधि संस्था स्थापित की जाए।
(ख) राज्यों के बजट को लोकप्रिय सभाओं के मतों के अधीन रखा जाए।
(ग) राज्यों के राजस्व को राजकुमारों के व्यक्तिगत व्यय से अलग रखा जाए तथा सिविल सूची को भी लोकप्रिय सभाओं के मतों के अधीन रखा जाए।
(घ) एक स्वतंत्र न्यायपालिका हो, प्रत्येक राज्य में न्यायिक कार्य पूर्णतः कार्यपालिका द्वारा किए जाएं तथा न्याय प्रशासन में राजकुमारों की व्यक्तिगत हस्तक्षेप पूर्णतः समाप्त हो जाए।

भारतीय राज्यों के लोगों का यह सम्मेलन आग्रह करता है :-

1. कि सम्पूर्ण भारत के लिए स्वराज्य की शीघ्र प्राप्ति के लिए भारतीय राज्यों को ब्रिटिश भारत के साथ संवैधानिक संबंधों में लाया जाना चाहिए तथा सम्पूर्ण भारत के लिए बनाए जाने वाले किसी भी नए संविधान में भारतीय राज्यों के लोगों को आम सरोकार के सभी मामलों में एक निश्चित स्थान तथा प्रभावी आवाज दी जानी चाहिए।
2. इस सम्मेलन की राय है कि यह दलील कि भारतीय राजाओं के पास ब्रिटिश ताज के साथ संधि के दायित्व हैं, जो कि फ़िलहाल भारत सरकार से पूरी तरह स्वतंत्र हैं, का कोई आधार नहीं है तथा यह सम्पूर्ण भारत के लिए स्वराज्य की प्राप्ति के लिए हानिकारक है।
3. यह सम्मेलन अपनी दृढ़ राय दर्ज करता है कि नागरिकता के मूल अधिकार जैसे कि संघ बनाने तथा बैठक करने का अधिकार, स्वतंत्र भाषण का अधिकार, स्वतंत्र प्रेस का अधिकार तथा व्यक्ति और संपत्ति की सुरक्षा

अब तक बहुत से राज्यों में लोगों को नहीं दिए गए हैं तथा इन अधिकारों को राजाओं द्वारा विधिवत् प्रख्यापित घोषणा में सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया जाना चाहिए तथा उपयुक्त कानूनों द्वारा और अधिक सुरक्षित किया जाना चाहिए।

4. इस सम्मेलन की राय है कि राजकुमार महाविद्यालयों में कुमारों को दी जाने वाली शिक्षा प्रणाली गलत ढंग से बनाई गई है और अनुपयुक्त है तथा इसका प्रभाव उन्हें अराष्ट्रीयकृत करने वाला है।

5. यह सम्मेलन आग्रह करता है :-

(क) कि भारतीय राज्यों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप की वर्तमान नीति किसी परिभाषित सिद्धांतों पर आधारित नहीं है।

(ख) कि इस तरह का हस्तक्षेप आम तौर पर लोगों के अधिकारों के संवर्धन और सुरक्षा के लिए नहीं किया गया है।

(ग) कि जिन सिद्धांतों या जिन पर इस तरह का हस्तक्षेप किया जाता है, उन्हें स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाना चाहिए।

6. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि भारतीय राजाओं के अनुरोध पर और भारतीय राज्यों के लोगों के किसी संदर्भ और प्रतिनिधित्व के बिना भारत के राज्य सचिव द्वारा एक विशेषज्ञ समिति नियुक्त की गई है, यह सम्मेलन इस बात पर सहमत है कि समिति द्वारा की गई कोई भी जांच लोगों के अधिकारों और स्वतंत्रता को गंभीर रूप से नुकसान पहुंचाएगी और उनके बोझ को अनावश्यक रूप से बढ़ाएगी और इसलिए इन परिस्थितियों में समिति द्वारा निकाले गए निष्कर्ष उन्हें पूरी तरह से अस्वीकार्य होंगे।

7. यह सम्मेलन कई राजाओं की बढ़ती प्रवृत्ति पर गंभीर चिंता और चिंता के साथ विचार करता है कि वे हर साल अपने समय का एक बड़ा हिस्सा अपनेराज्यों के बाहर बिताते हैं, जिससे उनके राज्यों और लोगों को राज्य के राजस्व से काफ़ी खर्च करना पड़ता है।

अध्याय–21
नया युद्धाभ्यास
बटलर समिति और राज्यों के लोग

बटलर समिति और उसकी गतिविधियों के बारे में आम जनता के विचार हम पहले ही देख चुके हैं। हालाँकि इसने लोगों की लगभग आपराधिक तरीके से उपेक्षा की थी, फिर भी इसे अपनी गलती के लिए सुधार करने के कई अवसर दिए गए। भारतीय राज्यों के विभिन्न समूहों के कई जिम्मेदार संगठनों ने लोगों के दृष्टिकोण को सुनने के लिए समिति का गठन किया। अखिल भारतीय राज्य जन सम्मेलन के महासचिव ने स्वयं समिति को पत्र लिखा, लेकिन व्यर्थ। समिति ने उसी टालमटोल वाले तरीके से उत्तर दिया जो कट्टर समितियों की विशेषता है। इसने कहा 'समिति को अपने संदर्भ की शर्तों के अनुसार भारतीय राज्यों और उसके विषयों के बीच संबंधों से निपटने का अधिकार नहीं है और इसलिए वे अपने विषय के संबंध में सार्वजनिक निकायों और निजी व्यक्तियों के लिखित या मौखिक साक्ष्य को स्वीकार करने की स्थिति में नहीं हैं।'

लेकिन जब वह अपनी मूल अतार्किक स्थिति को कायम नहीं रख सका, तो उसने आधे मन से नीचे झुकते हुए लिखा कि'ष्समिति को खेद है कि वे आपको मौखिक रूप से सहन करने में असमर्थ हैं, लेकिन उन्हें अपने संदर्भ की शर्तों के अंतर्गत सभी मामलों पर आपसे एक ज्ञापन प्राप्त करने में खुशी होगी, जिसके बारे में आप अपनी राय व्यक्त करना और अपने विचार देना चाह सकते हैं।' लेकिन कोई भी स्वाभिमानी व्यक्ति ऐसी अपमानजनक स्थिति को स्वीकार नहीं कर सकता था।

अंत में, जब बटलर समिति कुछ भारतीय राज्यों में दौरे करने और ग़रीब रैयत की कीमत पर महंगे रात्रिभोज और भव्य शो और आतिथ्य का आनंद लेने के बाद भारत के तटों को छोड़ रही थी, तो कुछ भारतीय राजाओं ने, राजकुमारों के चौंबर की स्थायी समिति की ओर से निम्नलिखित योजना पेश की। शुरू से ही, इस संबंध में राजाओं की सभी गतिविधियों को पूरी तरह से गुप्त रखने का हर संभव प्रयास किया गया था। जैसा कि इस देश में आम है, भारतीय राज्यों से संबंधित सभी मामलों में

लोगों को अंधेरे में रखने के लिए हर संभव प्रयास किया गया है और किया जा रहा है। लेकिन हत्या जैसी सच्चाई हमेशा सामने आ जाती है, और इसलिए पूरी योजना लीक हो गई, जो इस प्रकार है :-
'पूरी तरह गोपनीय।' दस्तावेज संख्या 4

1. 19 अप्रैल को बह्म्बे में होने वाली बैठक में विचार के लिए योजना।
2. यह योजना निम्नलिखित आवश्यकताओं को पूरा करने के उद्देश्य से बनाई गई है।
(क) राज्यों को उन राजनीतिक और आर्थिक अधिकारों के उपभोग में प्रभावी रूप से सुरक्षा प्रदान करना, जिसके वे वास्तव में हक़दार हैं, जिससे उनके संसाधनों को विकसित करने और उनके अच्छे और लाभकारी शासन के उद्देश्य को आगे बढ़ाने के उनके प्रयासों को सुविधाजनक बनाया जा सके।
(ख) साझा हित के मामलों में ब्रिटिश भारत के साथ संयुक्त परामर्श की व्यवस्था करना, ताकि साझा कार्रवाई की जा सके।
(ग) साझा हित के मामलों में ब्रिटिश भारत के साथ संयुक्त परामर्श की व्यवस्था करना, ताकि साझा कार्रवाई की जा सके।
(घ) भारत और पूरे साम्राज्य के हित में, ब्रिटिश भारत के साथ पारस्परिकता की शर्तों के तहत।
(ई) नीचे 5 (प) और (पप) में निर्दिष्ट प्रभावी सुरक्षा उपायों के तहत, घोर कुशासन, घोर अन्याय की स्थिति में हस्तक्षेप की कुछ अंतिम शक्तियों के प्रयोग की व्यवस्था करना।
3. इस योजना में तीन नए निकायों, भारतीय राज्यों की परिषद में वायसराय, संघ परिषद (अर्थात भारतीय राज्यों की परिषद और गवर्नर जनरल परिषद जो आम चिंता के मामलों को निपटाने के लिए एक साथ बैठेंगे) और संघ सर्वोच्च न्यायालय के निर्माण की परिकल्पना की गई है। इसमें वर्तमान चौंबर अह्फ प्रिंसेस की शक्तियों के विस्तार और राजनीतिक विभाग के संगठन और कार्यों में सुधार की भी परिकल्पना की गई है।

4. भारतीय राज्य परिषद में अध्यक्ष के रूप में वायसराय, राज्य के तीन प्रतिनिधि (या तो राजकुमार या मंत्री), भारत के साथ पहले से कोई संबंध न रखने वाले दो अंग्रेज सदस्य,और राजनीतिक विभाग के प्रमुख शामिल होंगे। यह सलाहकार परिषद के राजकुमारों के मूल विचार का एक स्वाभाविक विकास दर्शाता है।

5. भारतीय राज्य परिषद के कार्य नीचे उप-खण्ड (क) से (छ) में निर्धारित किए गए हैं तथा राज्यों के दृष्टिकोण से आवश्यक सुरक्षा उपायों को उपयुक्त उप-खण्ड के अन्तर्गत सूचीबद्ध किया गया है।

(क) राज्यों के हितों की रक्षा करना, तथा सामान्यतः राज्यों की आंतरिक स्वायत्तता के अधीन रहते हुए, भारत के राज्यों के पक्ष से उत्पन्न होने वाले कार्यों का संचालन करना।

(ख) भारत के राज्यों या संघ का प्रतिनिधित्व करना, परिषद जो राज्यों तथा ब्रिटिश भारत के लिए सामान्य सरोकार के मामलों में, नीचे दर्शाए गए सुरक्षा उपायों के अधीन रहते हुए, निर्णय लेने में सक्षम होगी।

सुरक्षा उपाय।

(1) वायसराय तथा भारतीय राज्य परिषद के प्रत्येक सदस्य को राज्यों के हितों के साथ-साथ राजकुमारों तथा सरदारों के संवैधानिक अधिकारों, शक्तियों तथा प्रतिष्ठा की रक्षा करने के लिए एक गंभीर दायित्व स्वीकार करना चाहिए। वायसराय भविष्य में अपने ऊपर यह कर्तव्य सौंपते हुए पद की अलग से शपथ ले सकता है, तथा भारतीय राज्य परिषद के प्रत्येक सदस्य की नियुक्ति के पेटेंट में इस दायित्व को स्थान मिलना चाहिए।

(2) तथा भारतीय राज्य परिषद का अधिकार राज्यों को सामान्य सरोकार के मामलों पर गवर्नर जनरल इन काउंसिल के साथ बातचीत के दौरान तय की गई व्यवस्थाओं के लिए प्रतिबद्ध करने का अधिकार अप्रतिबंधित नहीं होगा। चौंबर्स की स्थायी समिति और भारतीय राज्य परिषद मिलकर नीति के सामान्य सिद्धांत तैयार करेंगे जिन्हें भारतीय राज्य परिषद द्वारा सामान्य सरोकार के मामलों में राज्यों की इच्छा के लिए एक मार्गदर्शक के रूप में स्वीकार किया जाएगा। इस तरह से तय किए गए नीति के सामान्य सिद्धांतों

द्वारा कवर नहीं किए गए मामलों को चैंबर को संदर्भित करने की आवश्यकता होगी, जिसका राज्यों की ओर से भारतीय राज्य परिषद के अधिकार के प्रभावी होने से पहले किसी भी प्रस्तावित व्यवस्था का अनु-समर्थन आवश्यक होगा। इसके अलावा भारतीय राज्य परिषद और स्थायी समिति को निकट संपर्क में रहना चाहिए, और चौंबर के सत्रों के बीच उठने वाले आपात स्थितियों के सवालों से निपटने के उद्देश्य से संयुक्त बैठकों का उपयोग किया जा सकता है।

(3) प्रत्येक व्यक्तिगत राज्य को, जहाँ उसके हित विशेष रूप से प्रभावित होते हैं, भारतीय राज्य परिषद के समक्ष विशेष आधारों पर अपनी इच्छाओं को आग्रह करने का अवसर होना चाहिए।या तो

(क) अपने मामले में भारतीय राज्य परिषद या संघ परिषद में तय की गई सामान्य व्यवस्था को संशोधित करने के लिए। या

(ख) इस व्यवस्था से पूरी तरह अलग रहना। भारतीय राज्य परिषद प्रत्येक मामले के गुण-दोष के आधार पर निर्णय लेगी।

(4) प्रत्येक राज्य को संघ के सर्वोच्च न्यायालय से यह निर्णय प्राप्त करने का अधिकार होगा कि भारतीय राज्य परिषद, संघ परिषद या सर्वोच्च शक्ति के किसी प्रतिनिधि द्वारा शक्तियों का कोई विशेष प्रयोग असंवैधानिक है और तदनुसार अवैध है।

(5) भारतीय राज्य परिषद को वह नैतिक अधिकार प्रदान करने के लिए जो विधानमंडल परिषद में गवर्नर-जनरल को प्रदान कर सकता है, चैंबर ऑफ़ प्रिंस के कार्यों का विस्तार किया जाएगा और उसका महत्व बढ़ाया जाएगा। (नीचे पैरा 8 देखें) (ग) किसी राज्य में घोर कुशासन, घोर अन्याय की स्थिति में उसके द्वारा हस्तक्षेप के बारे में वायसराय को सलाह देना, जिस स्थिति में हस्तक्षेप के लिए संवैधानिक जिम्मेदारी व्यक्तिगत रूप से और विशेष रूप से उस पर बनी रहेगी, बशर्ते कि उसने पहले भारतीय राज्य परिषद से परामर्श किया हो और उससे सलाह ली हो।

सुरक्षा उपाय। पैरा में निहित स्पष्ट शर्त के अतिरिक्त। (ग):

(प) यह प्रावधान करना कि हस्तक्षेप होने से पहले :

मामले के तथ्य, जब तक कि स्वीकार न कर लिए जाएं, जाँच की एक ाज्य

प्रक्रिया द्वारा स्थापित किए जाने चाहिए, जिसमें राजकुमार या राज्य संबंधित पक्ष तब तक निर्दोषता की सामान्य धारणा का आनंद लेने वाला पक्ष होगा, जब तक कि विपरीत साबित न हो जाए, और उसे अपने खिलाफ़ सभी सबूतों को जानने और उनका सामना करने का अधिकार होगा।

(पप) यह प्रावधान करना कि ऐसी सलाह देने से पहले भारतीय राज्य परिषद राजकुमार को यह प्रावधान करना कि ऐसी सलाह देने से पहले भारतीय राज्य परिषद राजकुमार या राज्य द्वारा शासित को भारतीय राज्य परिषद के समक्ष अपने विचार या प्रस्ताव प्रस्तुत करने का अवसर देगी।

(पपप) राजनीतिक विभाग को निर्देशित और नियंत्रित करना। (नीचे पैरा 9 देखें)

(पअ) प्रिंसेस के चौंबर से संदर्भ प्राप्त करना, नीचे पैरा 6 (पपप) देखें, या किसी भी व्यक्तिगत राज्य से विचार या कार्रवाई की आवश्यकता वाले मामलों पर।

(अ) प्रिंसेस के चौंबर को विचार और सलाह के लिए किसी भी मामले को संदर्भित करनाय उपर्युक्त सामान्य शक्ति को सीमित किए बिना, शासकों के व्यक्तिगत विषयों, जैसे औपचारिक सम्मान और विशेषाधिकारों द्वारा प्रदान किए गए एक विशेष उदाहरण।

(अप) तथ्य या कानून के ऐसे प्रश्नों को संघ के सर्वोच्च न्यायालय को संदर्भित करना, या दोनों को किसी राज्य या चौंबर अहफ प्रिंसेस द्वारा संदर्भित किए जाने की आवश्यकता हो सकती हैय या अन्य मामले जिन्हें भारतीय राज्य परिषद ऐसे संदर्भ के लिए उपयुक्त विषय समझे।

संघ परिषद

(6) जैसा कि ऊपर कहा गया है, संघ परिषद भारतीय राज्य परिषद में वायसराय और संयुक्त सत्र में परिषद में गवर्नर-जनरल से मिलकर बनेगी, जिसकी अध्यक्षता विजय द्वारा की जाएगी। संघ परिषद के कार्य ब्रिटिश भारत और भारतीय राज्यों दोनों के लिए समान चिंता के विषयों पर विचार और कार्रवाई करना होगा, जिसमें शामिल होंगे,

(ए) रक्षा और विदेशी मामलों के संबंध में ताज का दायित्व।

(बी) समग्र रूप से भारत के हितों को बढ़ावा देना, जिसमें ब्रिटिश भारत

और भारतीय राज्यों के बीच हितों का आवश्यक समायोजन शामिल है, जहां दोनों पक्षों के हित समान नहीं हैं।

सुरक्षा उपाय

(प) गवर्नर जनरल की परिषद को भारतीय राज्य परिषद को वोट देने से रोकने का कोई अधिकार नहीं दिया जाएगा।

(पप) यदि ब्रिटिश भारत का कोई प्रस्ताव भारतीय राज्य परिषद के अधिदेश से परे जाता है ऊपर 5 बी (पप) देखें, तो उसे उस राज्य की विशिष्ट सहमति के बिना किसी भी राज्य के विरुद्ध लागू नहीं किया जा सकता है।

(पपप) यदि संघ परिषद में चर्चा किया गया कोई प्रस्ताव राज्यों के हितों पर इसके प्रत्याशित परिणामों के कारण भारतीय राज्य परिषद को स्वीकार्य नहीं होता है, तो उसे संघ परिषद की स्वीकृति नहीं मिलेगी। गतिरोध के ऐसे मामले से निपटने के लिए प्रावधान में सावधानीपूर्वक विचार-विमर्श की आवश्यकता है। विचारणीय है। एक संभावित उपाय यह हो सकता है कि वायसराय को प्रमाणन की वही शक्तियाँ दी जाएँ जो ब्रिटिश भारत में गवर्नर- जनरल को प्राप्त हैं।

(पअ) ऊपर 5 बी (पअ)

7. संघ का सर्वोच्च न्यायालय राजकुमारों के न्यायालय या मध्यस्थता के मूल विचार के तार्किक विकास का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें एक मुख्य न्यायाधीश और दो अन्य न्यायाधीश होंगे जो आजीवन उच्च वेतन पर नियुक्त किए जाएँगे, जिनका चयन ग्रेट ब्रिटेन के सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों में से किया जाएगा।

इसके कार्यों में सामान्य रूप से एक निष्पक्ष न्यायाधिकरण प्रदान करना शामिल होगा, जिसके समक्ष संवैधानिक और अन्य न्यायोचित मामलों को प्रिवी काउंसिल की स्वीकृति के अधीन भेजा जा सकता है, और विशेष रूप से यह तय करना कि,

एक ओर भारतीय राज्य परिषद या एक राज्य या राज्यों के बीच विवाद, और दूसरी ओर सर्वोच्च शक्ति, संधियों, समझौतों और प्रथा, पीड़ा या अन्यथा के तहत संबंधित अधिकारों और दायित्वों के संबंध में।

(इ) राज्यों के बीच न्यायोचित विवाद।

(ब) क्या ब्रिटिश भारत का कोई कानून जो किसी राज्य को प्रभावित करता है या कोई विधायी अधिनियम या राज्य ब्रिटिश भारत को प्रभावित करता है, वह अतिविरुद्ध है और इसलिए इस संबंध में ऐसे राज्य या ब्रिटिश भारत के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती है।

(क) किसी राजनीतिक प्रतिनिधि के अंतर्गत कानून या तथ्य का मुद्दा।

सुरक्षा उपाय

(प) जहाँ संघ के सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष मुद्दा संवैधानिक अधिकार के मामले में न्यायालय के निर्णय में है, वहां कोई दलील या 'राज्य का अधिनियम' स्वीकार्य नहीं होगा।

(पप) संघ के सर्वोच्च न्यायालय के पास शासक राजकुमार के व्यक्ति पर कोई अधिकार क्षेत्र नहीं होगा।

(पपप) संघ के सर्वोच्च न्यायालय को किसी राज्य की न्यायिक मशीनरी में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं होगा। संघ का सर्वोच्च न्यायालय ब्रिटिश भारतीय न्यायालय नहीं होगा बल्कि सर्वोच्च शक्ति और राजकुमारों द्वारा संयुक्त रूप से बनाया गया न्यायालय होगा। यह संभव है कि कुछ राज्य इसे अपनी अपील की अदालत के रूप में उपयोग करना चाहें। अपने स्वयं के उच्च न्यायालयों से अपील के लिए स्वयं द्वारा बनाए गए न्यायालयों के नियमों के तहत अपने अधिकार क्षेत्र को प्रदान करना। जब ऐसा हो, तो इसे राज्य के लिए अपील की अदालत के रूप में बैठे संघ के सर्वोच्च न्यायालय का हकदार बनाया जा सकता है :-

राजकुमारों का चैंबर।

8. ताकि चैंबर न केवल इसके लिए मूल रूप से प्रस्तावित सभी कार्यों को निष्पादित कर सके बल्कि इसे राजकुमारों की स्थिति और अधिकारों की रक्षा के लिए एक प्रभावी तंत्र भी बनाया जा सके, इसकी शक्ति और प्रभाव को निम्नलिखित द्वारा बढ़ाया जाना चाहिए :-

1. इसे स्थायी आदेशों और इसके एजेंडे पर नियंत्रण देना।

2. इसे किसी भी मामले को उठाने का अधिकार देना, जिसमें संबंधित राज्य की सहमति से, किसी व्यक्तिगत राज्य के मामले शामिल हैं।

3. इसे किसी भी मामले को विचार और कार्रवाई के लिए भारतीय राज्य परिषद को संदर्भित करने का अधिकार दिया गया है और भारतीय राज्य परिषद द्वारा की गई कार्रवाई पर प्रस्ताव पारित करने का भी अधिकार दिया गया है।(149)

4. इसे अपना स्वयं का सचिवालय देना, जिसमें अपना स्वयं का वेतनभोगी सचिव होगा, जो चैंबर के कामकाज़ के संचालन के लिए चैंबर के प्रति उत्तरदायी होगा, तथा जो भारतीय राज्य परिषद के सचिव के माध्यम से चैंबर और वायसराय के बीच एक स्थायी संपर्क प्रदान करेगा।

5. चैंबर के सचिव, तथा चांसलर और स्थायी समिति के सामान्य पर्यवेक्षण के अधीनय मंत्रियों की एक विशेष समिति द्वारा सहायता प्रदान की जाएगी, जिसे स्थायी समिति या चैंबर द्वारा समय-समय पर, या तो स्वयं की पहल पर या भारतीय राज्य परिषद के सुझाव पर नियुक्त किया जाएगा। जब भी आवश्यक हो, चांसलर के निर्देश पर चौंबर के सचिव द्वारा इन समितियों को बुलाया जाएगा।

6. चौंबर में समितियों की प्रक्रियाओं के लिए स्थायी आदेश प्रदान करना, जिसमें चांसलर की अध्यक्षता होगी, जैसे कि जब हाउस ऑफ कॉमन्स समिति में जाता है और स्पीकर कुर्सी छोड़ देता है।

7. सदन को नीति के सिद्धांतों पर अनुसमर्थन की कुछ शक्ति देना, जो भारतीय राज्य परिषद द्वारा आम चिंता के मामले में अनुकूलित किए गए हैं, लेकिन ऊपर 5(बी)(पप) में सुझाई गई प्रक्रिया के तहत पहले से ही काम नहीं किया गया है। राज्यों के वित्तीय हित या आंतरिक संप्रभुता को प्रभावित करने वाले मामलों में, यहाँ तक कि भारतीय राज्य परिषद द्वारा अनंतिम रूप से सहमत वास्तविक व्यवस्थाओं के लिए भी, अनुसमर्थन की कुछ समान विधि को लागू करना भी विवेकपूर्ण हो सकता है।

8. भारतीय राज्य परिषद के सदस्यों के लिए सदन में शीट प्रदान करना, जिन्हें सदन की बैठकों में उपस्थित होने का अधिकार होगा (जब वे समिति में नहीं हों) लेकिन वोट नहीं देने का, और उन पर यह कर्तव्य थोपना कि (क) जब राष्ट्रपति द्वारा निर्दिष्ट विषयों पर सदन को संबोधित करने के लिए

कहा जाए और (ख) या स्थायी आदेशों में निर्धारित प्रक्रिया के तहत उन्हें संबोधित प्रश्नों का उत्तर दें, सदन के किसी भी सदस्य द्वारा। राजनीतिक विभाग

9. राजनीतिक विभाग भारतीय राज्य परिषद के नियंत्रण और निर्देशन के अधीन होगा। इसके भविष्य की गतिविधियों को कुछ हद तक निम्नलिखित प्रावधानों द्वारा दर्शाया जाएगा :-

1. राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप करने पर शाही उद्घोषणा या अन्य उचित साधनों द्वारा एक सीमा लगाई जाएगी (2) (सी) उपर्युक्त, और राजाओं को इस सीमा के प्रत्येक उल्लंघन को मामले की प्रकृति के अनुसार भारतीय राज्यों की परिषद या संघ के सर्वोच्च न्यायालय के ध्यान में लाने के लिए प्रोत्साहित और अधिकृत किया जाएगा, जहाँ से आवश्यक निवारण प्राप्त किया जा सकता है।

2. भारतीय राज्यों की परिषद द्वारा राजकुमारों के चैंबर के परामर्श से राजनीतिक अधिकारियों को निर्देश देने का एक नया मैनुअल तैयार किया जाएगा, जिसमें राजनीतिक अधिकारियों के कर्तव्यों को परिभाषित किया जाएगा। यह मैनुअल राज्यों के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप को अधिकृत नहीं करेगा।

3. राजनीतिक विभाग के मौजूदा रिकॉर्ड भारतीय राज्यों की परिषद या उसके अधिकारियों के रिकॉर्ड कार्यालय को हस्तांतरित कर दिए जाएंगे और संबंधित राजकुमार या राज्य की जांच के लिए उपलब्ध होंगे जब कोई प्रश्न उठता है जो उसे या उसे प्रभावित करता है।

★

अध्याय–22
नवीन चालबाज़ी
संवैधानिक और राजनीतिक पहलू

अब हम एक ऐसे चरण पर पहुँच गए हैं जहाँ हमें रुककर भारतीय राज्यों की संवैधानिक और राजनीतिक स्थिति पर चर्चा करनी चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं कि अब तक किए गए विस्तृत विवरण और चर्चाओं के बाद कहने के लिए बहुत कम बचा है। फिर भी इस समस्या के कुछ पहलू हैं, जिन्हें अगर छुआ न जाए तो यह पुस्तक अपूर्ण और अधूरी रह जाएगी।

जहाँ तक राज-काज और व्यावहारिक राजनीति का सवाल है, तो 95 प्रतिशत भारतीय राजा उसी स्तर पर खड़े हैं जिस स्तर पर उनकी जनता है। 90 प्रतिशत राजा वर्तमान राजनीति से उतने ही दूर हैं जितना उत्तरी ध्रुव दक्षिणी ध्रुव से। आज उनकी पूरी राजनीति क्रूर और बर्बर तरीकों से लोगों से धन ऐंठने और ऊपर वर्णित विलासिता और भ्रष्टाचार से भरी जिंदगी जीने में समाप्त हो जाती है। वे यह भी नहीं सोचते कि वे आगे बढ़ रहे हैं या पीछे हट रहे हैं। जब वे शराब के प्रभाव से मुक्त होते हैं तो यह संभव है कि वे कुछ समय के लिए इस बारे में सोचते रहें कि दुनिया में क्या हो रहा है और उनका भविष्य क्या है, लेकिन जैसे ही शराब का लाल प्याला उनके होठों को छूता है, वे सब कुछ भूल जाते हैं, जो कुछ भी वे अन्यथा सीख सकते थे, वह उनके अपने रहन-सहन और जिस वातावरण में वे खुद को पाते हैं, उसके कारण बाधित हो जाता है। बचपन से ही एक ओर उन्हें आम लोगों से अलग रहने और उन्हें नीची निगाह से देखने की शिक्षा दी जाती है, और दूसरी ओर उन्हें ऐसे लोगों से घिरा रखा जाता है जो राजकुमारों के साथ अपने व्यवहार या व्यवहार में आत्म-सम्मान का जरा भी दिखावा करना और उनकी पोषित धारणाओं, असभ्यताओं और बेतुकी बातों से जरा भी असहमति जताना पाप समझते हैं। उन्हें सिखाया जाता है कि राष्ट्रवादी समाचार-पत्रों और पुस्तकों को पढ़ने की उनकी ख़बर ही रेजिडेंट और ब्रिटिश सरकार को नाराज करने के लिए पर्याप्त है। इसका परिणाम यह होता है कि वे समाज में रहने के लिए पूरी तरह से अयोग्य हो

जाते हैं। वे असहिष्णु, शंकालु और निरंकुश बन जाते हैं। बेशक कुछ चार या पांच राजकुमार हैं, जो राजनीतिक अधिकारियों के ग्रामोफोन के रूप में काम करते हैं, लेकिन अपने ज्ञान की पूर्णता में खुद को राजनीतिज्ञ और राजनेता के रूप में सोचते और पेश करते हैं। और यह नया कदम उनकी धूर्त गतिविधियों का परिणाम है। इसलिए, सरकार को भी यह स्वीकार करने के लिए मजबूर होना पड़ा कि इस योजना का सभी राजकुमारों द्वारा विरोध नहीं किया गया है।

लेकिन यह बात अलग है। असली बात पर आते हैं, योजना की पूरी इमारत इस सिद्धांत पर टिकी हुई है कि भारतीय राजकुमार क्राउन के अधीन हैं। उन्होंने हमेशा खुद को क्राउन के प्रति वफ़ादार कहा है। यहाँ तक कि अपने भाषणों में भी उन्होंने क्राउन-सम्राट के प्रति अपनी वफादारी पर बार-बार जोर दिया है। उन्होंने दूसरों से जानबूझकर परहेज किया है।
हमें यह स्वीकार करना होगा कि औसत बुद्धि वाले व्यक्ति के लिए यह एक गूढ़ रहस्य है, क्योंकि :-
(1) राजकुमारों ने ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ तभी संधि की जब वह इस देश की शासक शक्ति बन गई। दूसरे शब्दों में, उन्होंने एक सरकार के रूप में इसके साथ संधि की। भारत के साथ और इंग्लैंड की सरकार के रूप में या इंग्लैंड के राजा के साथ नहीं।
(2) इसके अलावा, चार्ल्स द्वितीय द्वारा कंपनी को चार्टर दिए जाने से बहुत पहले ही संधियाँ हो चुकी थीं,
(3) उसी समय ब्रिटिश सरकार का यह दावा कि वह इस देश में सर्वोच्च शक्ति है, इसी तरह के सिद्धांतों पर आधारित था। श्री पणिकर के अनुसार 'यह नीति इस कानूनी सिद्धांत पर आधारित थी कि विद्रोह के बाद दिल्ली में पादशाह के विस्थापन के परिणामस्वरूप मुग़ल सम्राट का अधिकार अंग्रेजों को प्राप्त हो गया है। ब्रिटिश क्राउन ने न केवल ईस्ट इंडिया कंपनी के स्थान पर खड़े होने का दावा किया, जिसके साथ कई राज्यों ने समानता के आधार पर संधियाँ की थीं, बल्कि मुगल साम्राज्य की जीर्ण-शीर्ण हो चुकी विरासत को अपने ऊपर ले लिया और अकबर और शाहजहाँ द्वारा लागू किए गए संप्रभुता के अधिकारों का दावा किया। दूसरे शब्दों में, यदि ब्रिटिश सरकार

ने कंपनी के प्रत्यक्ष उत्तराधिकारी के रूप में या कंपनी को दिए गए चार्टर के आधार पर इस देश की बागडोर संभाली होती, तो उसके लिए यह आवश्यक होता कि वह कंपनी द्वारा उनके साथ किए गए समझौते के अनुसार राज्यों के साथ समान व्यवहार करे। लेकिन उसने भारत की पुरानी सरकार के प्रत्यक्ष उत्तराधिकारी के रूप में खड़े होने और इस देश की बागडोर संभालने का दावा किया, मुगल पादशाही और राजकुमारों ने भी इसे उसी भावना से स्वीकार किया।

(4) इसके अलावा, अब तक जितने भी राजकुमार पद्च्युत हुए हैं, उनके मामलों की जाँच के लिए नियुक्त सभी आयोग और राजनीतिक एजेंटों द्वारा किए गए सभी हस्तक्षेप और दखलंदाज़ी आदि, सभी कार्य गवर्नर जनरल इन काउंसिल के आदेश से किए गए हैं।

(5) राजनीतिक विभाग जिसने हमेशा इन राज्यों के भाग्य पर शासन किया है, हमेशा भारत सरकार के प्रत्यक्ष नियंत्रण में रहा है और है।

(6) यह भारत सरकार है जो भारत से संबंधित सभी मामलों में और भारतीय राज्यों सहित समग्र रूप से विदेशी शक्तियों के साथ व्यवहार करती है।

(7) यह भारत सरकार है न कि एन.

(8) राज्यों के भीतर रेलवे, टेलीग्राफ़, डाक आदि पर अधिकार क्षेत्र भारत सरकार का है, न कि इंग्लैंड का।

(9) आयात और निर्यात शुल्कों को विनियमित करना भारत सरकार का अधिकार रहा है।

(10) शाही रक्षा बलों और भारतीय राज्य बलों के कर और अनुदान बजट में दिखाए जाते हैं, जिसे ब्रिटिश भारत की निर्वाचित विधान सभा के समक्ष रखा जाता है और वह इन सभी मदों पर अपना निर्णय देती है।

(11) राजकुमारों के संरक्षण अधिनियम को भी विधानमंडल के समक्ष स्वीकृति के लिए रखा गया।

(12) इसके अलावा, सभी राजकुमारों की स्थिति एक जैसी नहीं है। उनमें से काफी संख्या में राजाओं की स्थिति केवल सामंतों जैसी है। इन परिस्थितियों में यदि सभी तथाकथित राज्य अपने राज्य के दर्जे की मान्यता

की मांग करने के हक़दार हैं, तो इन राज्यों के जागीरदारों को भी यही दर्जा क्यों नहीं दिया जाना चाहिए। वे भी राजकुमारों के समक्ष उसी स्थिति में हैं, जैसे वे स्वयं सरकार के समक्ष हैं।

इन सभी तथ्यों के सामने, ताज के साथ सीधे संबंध के सिद्धांत के औचित्य और तर्कसंगतता को समझना वास्तव में बहुत कठिन है।

और भारतीय सरकार के साथ स्थिति की समानता का दावा कैसे कसौटी पर खरा उतर सकता है? पूर्ण अंतर्राष्ट्रीय शक्तियों और स्थिति वाली भारत सरकार और ग़रीब, भारतीय राजाओं के बीच क्या तुलना हो सकती है जो केवल सामंती सरदार हैं। इन परिस्थितियों में उनका दावा पागलपन के अलावा और कुछ नहीं है।

भारतीय राज्यों के लोग भी हमेशा के लिए किसी भी शक्ति, विदेशी या स्वदेशी के अधीन नहीं रहना चाहते हैं। साथ ही हम राजाओं, भारतीय राज्यों के लोगों, ब्रिटिश भारतीय लोगों और भारत सरकार के संयुक्त प्रयासों और सहमति से अस्तित्व में आए एक संघ की कल्पना कर सकते हैं। लेकिन हम ऐसे सफ़ल संघ की कल्पना नहीं कर सकते जिसके निर्माण में न तो ब्रिटिश भारत के लोगों का हिस्सा हो और न ही भारतीय राज्यों का, जिसके बारे में सब कुछ भारतीय शासकों और ब्रिटिश सरकार द्वारा तय और किया गया हो और जिसमें एक (भाग) का प्रशासन बर्बर और निरंकुश प्रकार का हो और दूसरे का लोकतांत्रिक चरित्र का हो।

फिर संघ बनाने का अधिकार स्वतंत्र लोगों और सरकारों का है, गुलामों का नहीं। गुलामों का संघ किसी तीसरी शक्ति के हाथों में अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए एक मात्र मोहरा या साधन मात्र हो सकता है। लेकिन यह ऐसी चीज नहीं हो सकती जो समृद्धि और शांति की ओर ले जाए। यह केवल अपने सदस्यों को विभाजित करके और उन्हें एक-दूसरे के गले पर लादकर उन्हें नष्ट कर सकता है।

राजकुमारों के इस दावे के विरुद्ध एक और बड़ी संवैधानिक कठिनाई है। राजकुमार भी खुद को क्राउन के प्रति वफादार होने का दावा करते हैं, जिसका अर्थ है कि वे क्राउन के अधीन हैं। अपनी वफादारी का आश्वासन देना हमेशा से उनके सभी औपचारिक और आधिकारिक कार्यों का विषय

और एक महत्वपूर्ण परंपरा रही है। महारानी विक्टोरिया ने भी अपनी घोषणा में राजकुमारों सहित अपनी सभी प्रजा को जोड़ते हुए कहा था कि ष्हम अपने सभी प्रजाजनों से, जो उक्त प्रदेशों में रहते हैं, हमारे प्रति, हमारे उत्तराधिकारियों और उत्तराधिकारियों के प्रति वफ़ादार रहने और सच्ची निष्ठा रखने का आह्वान करते हैं।'

इस घोषणा में उत्तराधिकारी शब्द बहुत महत्वपूर्ण है। इसका स्पष्ट अर्थ है और राजकुमारों सहित महारानी की सभी प्रजा से कहता है कि वे महारानी के उत्तराधिकारियों के अलावा किसी भी सरकार के प्रति वफादार रहें, चाहे वह गणतंत्र हो या कोई अन्य रूप।

इसीलिए उत्तराधिकारी शब्द को वारिस शब्द में जोड़ा गया है। तब वारिस और उत्तराधिकारी शब्दों के बीच संयोजन और है, न कि या जिसका अर्थ है कि उत्तराधिकारी शब्द की व्याख्या बिल्कुल स्वतंत्र रूप से की जानी चाहिए। इसे वारिस शब्द से कोई संबंध नहीं माना जा सकता और चूंकि भारत सरकार या भारतीय स्वराज सरकार इस देश में ब्रिटिश क्राउन की संवैधानिक रूप से उत्तराधिकारी बन रही है, जो कि ब्रिटिश सरकार से भी अधिक संवैधानिक रूप से है, जो कि संवैधानिक तरीकों से नहीं बल्कि एक असंवैधानिक, खूनी और दुष्ट संघर्ष के बाद मुग़लों की उत्तराधिकारी बनी थी, इसलिए भारतीय राजाओं के उसके नियंत्रण से बाहर जाने के दावे का कोई संवैधानिक आधार नहीं है।

एक और बात है जिसे ब्रिटिश कट्टरपंथियों ने अनगिनत बार उछाला है। इसे भारतीय विधानमंडल में भी दोहराया गया जब इसके सदस्यों ने सुधारों की आगे की मांगों के लिए प्रस्ताव पेश किया। कहा गया था कि 'भारतीय राज्य हैं...वे जानना चाहेंगे कि क्या वे अब तक की तरह ब्रिटिश संसद के लिए जिम्मेदार गवर्नर-जनरल इन काउंसिल से या भारतीय विधानमंडल के लिए ज़िम्मेदार कार्यकारी सरकार से निपटना जारी रखेंगे।* लेकिन सवाल यह है कि क्या ब्रिटिशसरकार इस तरह के सवाल को संबंधित व्यक्तियों की इच्छा से तय करने के लिए तैयार है, दूसरे शब्दों में लोगों को आत्मनिर्णय का अधिकार देने के लिए? यदि ऐसा है, तो भारतीय राज्यों के लोगों ने

स्पष्ट भाषा में कहा है कि वे चाहते हैं किब्रिटिश भारत के साथ उनके सीधे संबंध हैं, न कि ब्रिटिश सरकार के साथ, जैसा कि राजकुमारों ने ज़ोर दिया है। इन परिस्थितियों में, क्या ब्रिटिश सरकार मुट्ठी भर भारतीय शासकों को अपने संरक्षण में रखने और अपने लोगों को अपनी मर्जी से काम करने के लिए स्वतंत्र छोड़ने के लिए तैयार है? इसके अलावा, क्या ब्रिटिश भारत 24 घंटे भी उनके अधीन रहने के लिए तैयार है?

लेकिन इस क़दम के पीछे मक़सद क्या है? ऐसा कहा जाता है कि ब्रिटिश भारत की सरकार दिन-प्रतिदिन अधिक ज़िम्मेदार और प्रतिनिधि होती जा रही है। इसकी शक्ति लोगों के हाथों से गुजर रही है। इसने स्वाभाविक रूप से राजकुमारों को चौंका दिया है। उन्हें यह सोचने और महसूस करने के लिए प्रेरित किया गया है कि उनका अस्तित्व एक गणतंत्र सरकार के बजाय राजा-सम्राट के संरक्षण में अधिक सुरक्षित होगा।यह संभव है कि कुछ लोग इस पर विश्वास करते हों। लेकिन जैसा कि इतिहास के प्रत्येक छात्र को अच्छी तरह से पता है कि राजा का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। वह संसद के हाथों का खिलौना है। इसके अलावा संसद भारत सरकार की तुलना में लोगों का अधिक प्रतिनिधित्व करती है। ऐसा ही रहेगा। इंग्लैंड के लोग भी भारत की तुलना में भावना में अधिक गणतंत्रवादी हैं। इंग्लैंड के कट्टर साम्राज्यवादी भी हमारे भारतीय राजाओं द्वारा की गई बर्बरता और क्रूरता को एक क्षण के लिए भी बर्दाश्त नहीं करेंगे। इसके अलावा लेबर के सत्ता में आने की पूरी संभावना है, जबकि भारत में पूंजीवादी गणराज्य का दिन भी अभी दूर लगता है। क्राउन के साथ सीधे संबंध के सिद्धांत को स्वीकार किए जाने के बाद भारतीय राज्यों के प्रशासन में बुराइयों और अच्छाइयों के लिए संसद सीधे ज़िम्मेदार होगी। क्या संसद भारतीय राज्यों को भ्रष्टाचार, व्यभिचार और बर्बरता का अड्डा बनाकर सभ्य दुनिया की नज़रों में खुद को हंसी का पात्र बनाएगी? संक्षेप में, अगर वे लोकतंत्र के आगमन से डरते हैं तो यह बेकार है। वे इससे बच नहीं सकते। उनका उद्धार खुद को इसके अनुकूल बनाने में है, इससे भागने में नहीं। या बेशक, कोई इसे समझ सकता है अगर उनका उद्देश्य केवल ब्रिटिश भारत के बराबर अपनी स्थिति को ऊपर उठाना है। हालांकि, तब भी उन्हें याद रखना चाहिए कि यह संभव

है कि ब्रिटिश सरकार अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए नाममात्र के लिए उन्हें कुछ इस स्तर तक बढ़ा देय फिर भी, व्यवहार में कोई भी परिवर्तन नहीं होगा। इंग्लैंड को इस देश पर, सभी मामलों में, भारत सरकार के माध्यम से शासन करना होगा। वे केवल भारतीय राजाओं के हित के लिए कोई नई प्रशासनिक मशीनरी नहीं ला सकते और न ही लाएंगे।

लेकिन सवाल वहीं का वहीं है। यदि उनके भारी प्रयास से कोई सौदा नहीं हो सकता, तो ब्रिटिश साम्राज्यवादियों द्वारा इन गतिविधियों को क्यों प्रोत्साहित किया जा रहा है? उन्होंने इस तमाशे को ऐसा रंग क्यों दिया है? क्या इसका मतलब यह है कि ब्रिटिश क्राउन या राजा-सम्राट, राजाओं के साथ इस सीधे गठबंधन के रूप में एक नया गढ़ बनाकर, संसद पर अपना प्रभुत्व जमाना चाहते हैं? क्या यही कारण है कि क्राउन के साथ संबंधों पर इतना जोर दिया जा रहा है, संसद के साथ नहीं? क्या यह इंग्लैंड और इस देश के लोगों को लड़ाने और उन्हें कुचलने के लिए सेनाओं का एक नया कारखाना बनाने की योजना है? क्या आज के समय में ऐसी कोई बात संभव और व्यावहारिक है? क्या इंग्लैंड के राजनेता और राजघराने इतने पतित हो सकते हैं! और अगर ऐसा है, तो क्या ब्रिटिश लोग इसे बर्दाश्त करेंगे। इस पर यक़ीन करना मुश्किल है।

* संवैधानिक उन्नति पर श्री रंगाचारी के प्रस्ताव पर सरकार के रवैये को स्पष्ट करने के लिए तत्कालीन गृह सदस्य सर मैल्कम हैली द्वारा दिए गए विशेष भाषण को देखें।

★

अध्याय–23
नवीनतम चालें
समिति और योजना

लेकिन हमें डर है कि न तो सर लेस्ली स्कॉट और न ही राजकुमार संवैधानिक दृष्टिकोण से ऐसी योजना पेश कर सकते हैं और न ही बटलर समिति के पास इसे स्वीकार करने का कोई अधिकार है क्योंकि, इसके संदर्भ की शर्तों के अनुसार इसे केवल ब्रिटिश भारत और राज्यों के बीच वित्तीय और आर्थिक संबंधों की जांच करने की आवश्यकता है। इस प्रकार, यह, अपने संदर्भ की शर्तों से ही, ब्रिटिश भारत और भारतीय राज्यों के राजनीतिक समायोजन के लिए एक संविधान तैयार करने की मौलिक समस्या से निपटने से वंचित है। लेकिन दूसरी ओर, सर लेस्ली स्कॉट की योजना मुख्य रूप से प्रश्न के राजनीतिक पहलू से निपटती है।

और अगर यह संवैधानिक प्रक्रिया के सीधे उल्लंघन में किया जाता है, तो लोगों को अपने विचारों का प्रतिनिधित्व करने के अधिकार से कैसे वंचित किया जाता है। इन आपत्तियों के जवाब में योजना के समर्थकों द्वारा दो तर्क दिए गए हैं। पहला, कि सरकार ने राजकुमारों के साथ संधियाँ कीं, न कि राज्यों के लोगों के साथ। दूसरा, संधियों के अनुसार, केवल राजमुकुट और राजकुमारों के पास कुछ पारस्परिक दायित्व हैं और केवल राजकुमार ही राजमुकुट के प्रति निष्ठा रखते हैं और इसलिए वे जनता के प्रति नहीं, बल्कि राजमुकुट से सुरक्षा के हक़दार हैं। भारतीय राज्यों के लोग सीधे तौर पर कहीं नहीं आते और इसलिए उन्हें इस जांच में एक पक्ष के रूप में शामिल होने के अधिकार से वंचित किया गया है।तथाकथित विशेषज्ञों की समिति के प्रमुख सर हरकोर्ट बटलर ने भी ऐसे आधारों पर इस अधिकार से इनकार किया है।लेकिन वे कमज़ोर और बेतुके हैं। आइए हम उन्हें एक-एक करके परखें। सबसे पहले निष्ठा के तर्क को लेने के लिए, आइए पाठकों को मणिपुर के मामले की याद दिलाएं। मणिपुर राज्य के लोगों ने अपने शासक के खिलाफ़ विद्रोह कर दिया और शासक राजकुमार के भाई की मदद से उसके स्थान पर उत्तराधिकारी को गद्दी पर बिठा दिया। ब्रिटिश सरकार ने नए शासक को मान्यता दी लेकिन उससे मांग की कि उसके चाचा, जिसने विद्रोह में मदद की थी, को दंडित किया जाना चाहिए। और जब उन्होंने ऐसा करने से इनकार कर

दिया तो ब्रिटिश सेना ने क्षेत्र में प्रवेश किया और उन्हें पद्च्युत कर दिया। राज्यों को घोषणा के माध्यम से चेतावनी दी गई कि भारतीय राज्यों के नागरिकों को ब्रिटिश सिंहासन के प्रति प्रत्यक्ष निष्ठा और वफादारी का पालन करना चाहिए, जिसका अर्थ है कि उन्हें क्राउन के खिलाफ जाने का कोई अधिकार नहीं है, भले ही उनके शासक ऐसा करना चाहें। इस प्रकार यह बात सामने आती है कि राज्यों के लोगों को क्राउन के प्रति वही कर्तव्य और निष्ठा का पालन करना चाहिए जो राजकुमारों को करना चाहिए और इसलिए सरकार को राज्यों के लोगों के प्रति वही कर्तव्य का पालन करना चाहिए जो वह राजकुमारों के प्रति करती है। सर लेस्ली स्कॉट ने इस सवाल को केवल यह कहकर टाल दिया कि 'मणिपाल क्रांति जो इसे (राज्यों की अंतर्राष्ट्रीय स्थिति को) नकारती है, उसे मामले की परिस्थितियों के संदर्भ में सख्ती से बनाया जाना चाहिए।'

लेकिन हम यह मानते हैं कि भारतीय राज्यों के लोगों का ऐसे सभी मामलों में राजाओं के साथ समान भागीदार होने का दावा केवल ऐसे ही प्रचलनों और अलग-अलग मामलों पर आधारित नहीं है, बल्कि महारानी विक्टोरिया की घोषणा द्वारा उन्हें दिए गए संवैधानिक अधिकारों पर आधारित है,जो कहती है 'चूँकि कई महत्वपूर्ण कारणों से हमने भारत सरकार को अपने ऊपर लेने का संकल्प लिया है, हम इन प्रस्तुतियों द्वारा अधिसूचित करते हैं और घोषणा करते हैं कि हमने सहायक सरकार को अपने ऊपर ले लिया है और हम उक्त क्षेत्रों के भीतर अपने सभी विषयों से आग्रह करते हैं कि वे हमारे प्रति वफादार रहें और सच्ची निष्ठा रखें, हमारे उत्तराधिकारी उत्तराधिकारी हैं।'

हम अपने क्षेत्रों के मूल निवासियों के प्रति उन्हीं कर्तव्यों के द्वारा खुद को बाध्य मानते हैं जो हमें अपने अन्य विषयों के प्रति बाध्य करते हैं, और सर्वशक्तिमान ईश्वर के आशीर्वाद से हम इन दायित्वों को ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा से पूरा करेंगे और अब, घोषणा में भारत और क्षेत्रों शब्दों का क्या अर्थ है? श्री इल्बर्ट के अनुसार, 1889 के इंटरप्रिटेशन एक्ट (52 और 53 विक्ट. सी. 63 एस 18) और 1897 के इंडियन जनरल क्लाज एक्ट (33-27) द्वारा परिभाषित भारत में न केवल ब्रिटिश भारत में शामिल क्षेत्र शामिल हैं, यानी क्राउन की प्रत्यक्ष संप्रभुता के तहत क्षेत्र, बल्कि आश्रित देशी राज्यों के क्षेत्र भी शामिल हैं।*

अब इससे यह स्पष्ट है कि राज्यों के लोगों के कर्तव्य और निष्ठा तथा क्राउन के राज्यों के लोगों के प्रति दायित्व वही हैं जो राजकुमारों और क्राउन के एक-दूसरे के प्रति हैं। इसलिए राज्य या क्षेत्र का मतलब राजकुमार और उसके लोग दोनों हैं और परिणामस्वरूप इस जाँच में उन दोनों को समान अधिकार और अवसर दिए जाने चाहिए।

इसके अलावा, हम पाठकों का ध्यान लॉर्ड रीडिंग द्वारा निजाम को लिखे गए प्रसिद्ध पत्र और मि. इल्बर्ट द्वारा भारत सरकार में भारतीय राज्यों की स्थिति के बारे में दिए गए स्पष्टीकरण की ओर आकर्षित करना चाहेंगे, जिसमें भारतीय राज्यों के विषयों के प्रति क्राउन के दायित्व को स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया है।

अब दूसरे तर्क पर आते हैं, यह स्पष्ट रूप से कहा जाना चाहिए कि भारत के अधिकांश लोग वास्तव में, भारतीय राज्य इन संधियों को अपने लिए बाध्यकारी नहीं मानते। वे तर्क देते हैं और सही तर्क देते हैं कि इनका उन लोगों पर कोई बाध्यकारी बल नहीं है जो न तो इनमें पक्ष रहे हैं और न ही कभी इन्हें मंजूरी दी गई है, ख़ासकर 20वीं सदी में। सरकार के पास उनकी पीठ-पीछे कोई विशेषाधिकार नहीं है। लेकिन अगर यह मान भी लिया जाए तो ऐसा कोई कारण नहीं दिखता कि भारतीय राज्यों के लोगों को इस जांच में राजाओं के बराबर स्थान और अवसर क्यों न दिए जाएं। इनमें से कौन सी मदें, जैसे रेलवे, डाक, टेलीग्राफ, उत्पाद शुल्क, विनिमय, नमक और अफीम के एकाधिकार, सीमा शुल्क, टैरिफ़ आदि, ऐसी हैं जिनका बोझ केवल भारतीय राज्यों के लोगों की जेब पर नहीं पड़ता? इन मदों के लिए राजा अपनी जेब से कितने पैसे देते हैं? अगर नहीं, तो उनसे मिलने वाले लाभों को पाने और जांच में भाग लेने के लिए उनके पास क्या अधिकार और अधिकार हैं? यदि राजाओं को यह अधिकार दिया जाता है, तो लोगों को भी यह अधिकार है कि वे स्वयं को राजगद्दी के प्रति सभी दायित्वों और निष्ठाओं से मुक्त समझें। उन्हें आवश्यकता पड़ने पर ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विद्रोह करने का भी अधिकार है।

अब योजना की बात करते हैं। ऐसी योजना से क्या लाभ की आशा की जा सकती है, जो इतनी दूरदृष्टि से बनाई गई हो। और यही बात वास्तव में घटित हुई है। इसमें लोगों की इस तरह उपेक्षा की गई है, मानो पृथ्वी पर भारतीय

राज्यों के लोगों जैसी कोई चीज ही नहीं है। राजाओं की इच्छाओं के बारे में तो सब कुछ कहा गया है, लेकिन वे अपने लोगों के लिए क्या करेंगे, इस बारे में कुछ नहीं कहा गया है और उन्हें ऐसा क्यों करना चाहिए? भारतीय राज्यों के लोग पहले से वर्णित दमनकारी कानूनों और बर्बर प्रथाओं के कारण इतने असहाय और दबे हुए हैं कि वे मारे जाने पर भी रो नहीं सकते। नहीं, वे असहनीय परिस्थितियों से छुटकारा पाने के लिए एक-दूसरे के प्रदेशों में भाग भी नहीं सकते। न ही सार्वजनिक कर्मचारी उनकी सहायता कर सकते हैं या अन्य राज्यों के क्षेत्रों में भी राज्यों के प्रशासन की प्रतिकूल आलोचना कर सकते हैं। यदि वे ऐसा करने का साहस करते हैं, तो पुलिस अधिकारियों से मात्र अनुरोध ही उनके प्रत्यर्पण के लिए पर्याप्त होगा, चाहे उनके कथन या क्रियाकलाप इसके लिए उपयुक्त हों या नहीं। लेकिन सवाल यह है कि क्या ग्रेट ब्रिटेन के सतर्क और बुद्धिमान लोग इन चीज़ों को बर्दाश्त करेंगे और क्या उन्हें ऐसा करना चाहिए? यदि वे राज्यों के लोगों के लिए बोलने, बैठक करने, संघ बनाने और कार्रवाई करने की स्वतंत्रता और प्रशासन में उनके उचित हिस्से को सुरक्षित करने से पहले राजकुमारों की मांगों को स्वीकार करते हैं, तो क्या वे अपनी क़ब्र खुद नहीं खोद रहे होंगे। न ही यह कहा जा सकता है कि इस योजना ने राजकुमारों को कुछ ठोस दिया है। इसका थोड़ा-सा आलोचनात्मक अध्ययन यह बताएगा कि यह न केवल अव्यवहारिक है बल्कि उनके हितों के लिए हानिकारक भी है। इसके अनुसार राजकुमार हमेशा ब्रिटिश नौकरशाही के हाथों के खिलौने बने रहेंगे। उदाहरण के लिए, भारतीय राज्य परिषद तीन राजकुमारों, इंग्लैंड से सीधे चुने गए और भेजे गए तीन अंग्रेजों और वायसराय के अध्यक्ष से बनी होगी। इसका मतलब है कि भारतीय शासक हमेशा अल्पमत में रहेंगे और इस तरह से हमेशा लाभ गोरे नौकरशाहों को ही मिलेगा। इसमें कई अन्य खामियाँ हैं जो विभिन्न शासकों और उनके हितों के बीच दरार पैदा कर सकती हैं और इस तरह उन्हें उस थोड़े से लाभ से वंचित कर सकती हैं जो उन्हें अन्यथा मिल सकता है।

लेकिन सबसे बुरा अभी आना बाक़ी है। इस योजना का उद्देश्य भारतीय राष्ट्रवाद के बढ़ते ज्वार के खिलाफ़ एक मज़बूत मोर्चाबंदी करना भी है। इसने संघ परिषद के नियमों में सबसे खतरनाक और शरारती वाक्य को बहुत ही बेबाकी से जोड़ा है, जिसमें कहा गया है कि इसके कार्य 'रक्षा और विदेशी

मामलों के संबंध में क्राउन के दायित्वों पर विचार करना और उन पर कार्रवाई करना' होंगे।

अब यह खंड सेना और विदेश और राजनीतिक विभाग से संबंधित सभी चीज़ों को कवर करता है और इस परिषद का गठन कौन करेगा। यह ऊपर वर्णित भारतीय राज्यों की परिषद के सभी सदस्यों और गवर्नमेंट-जनरल की कार्यकारी परिषद के सदस्यों से मिलकर बनेगी, जो एक नियम के रूप में नौकरशाही और उसके हितों के प्रवक्ता मात्र हैं। यहाँ तक कि अगर पूर्ण स्वराज होता और कार्यकारी के सभी सदस्य चुने जाते, तो भी यह कल्पना करना मुश्किल है कि उन्हें ऐसे महत्वपूर्ण और अहम मामलों में इतनी स्वतंत्रता दी गई होती। दूसरे शब्दों में, इस खंड का मतलब है कि भारत को कभी स्वराज नहीं मिलेगा।

इसी तरह, हालांकि संघ का सर्वोच्च न्यायालय ब्रिटिश क्राउन का संयुक्त निर्माण होगा।और केवल भारतीय राजाओं को ही नहीं, भारतीय राज्यों के लोगों को तथा ब्रिटिश भारत के लोगों को भी इसमें कोई हस्तक्षेप नहीं दिया जाएगा। और यद्यपि राजागण अपने उच्च न्यायालयों की अपीलों की सुनवाई करने का अधिकार उसे प्रदान करने के हक़दार होंगे तथा इस प्रकार उस पर अपना प्रभाव बढ़ाएंगे, फिर भी उसके निर्णय ब्रिटिश भारत तथा भारतीय राज्यों के लोगों पर बाध्यकारी होंगे लेकिन इसका हास्य यह है कि यद्यपि सर्वोच्च न्यायालय को भारतीय राज्यों के उच्च न्यायालयों की अपीलों की सुनवाई करने का अधिकार दिया जाएगा, तथापि उसे किसी भी राज्य की न्यायिक मशीनरी में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं होगा। लेकिन हमें इस चर्चा को और आगे नहीं बढ़ाना चाहिए। जहाँ तक इस योजना के भारत पर अन्य पहलुओं तथा प्रभावों का संबंध है, हम यहाँ हमारे देश के आज के अग्रणी राजनेता पंडित मोती लाल नेहरू की राय देने से बेहतर कुछ नहीं कर सकते। इस विषय पर चर्चा करते हुए वे कहते हैं :-

'शासक राजाओं की ओर से सहानुभूति का एक दोस्ताना इशारा बहुत स्वागत योग्य है, लेकिन इससे पहले कि मैं इसकी पूरी तरह सराहना करूं, मुझे यह जानना होगा कि भविष्य के भारत में वे अपने लिए कौन-सा स्थान तलाश रहे हैं। राज्यों और ब्रिटिश भारत के बीच संबंधों के समायोजन के लिए संवैधानिक साधनों का निर्माण मेरे विचार में दो भारतों के निर्माण को दर्शाता ह

है, जिनमें से प्रत्येक एक दूसरे से स्वतंत्र है और संघर्षों से बचने के लिए किसी न किसी तरह की मशीनरी है। ऐसा लगता है कि दो अलग-अलग राज्य एक दूसरे के साथ राजनयिक संबंध रखते हैं, चाहे उनमें सरकार का कोई भी रूप क्यों न हो। यह ब्रिटिश भारत के साथ कैसे मेल खाएगा, जो किसी भी समय डोमिनियन स्टेटस का आनंद ले रहा था, स्वतंत्रता की तो बात ही छोड़िए? इसका उत्तर शायद यह होगा कि स्वतंत्रता अकल्पनीय है और डोमिनियन स्टेटस तो दूर की बात है लेकिन जब तक मैं यह सोचने में सही नहीं हूँ कि भारत सरकार अधिनियम की प्रसिद्ध प्रस्तावना, जो ग्रेट ब्रिटेन को उत्तरदायी सरकार के प्रगतिशील कार्यान्वयन के लिए वचनबद्ध करती है, महज काग़ज़ का टुकड़ा है और भविष्य की संसदों पर बाध्यकारी नहीं है, तब तक यह विचार करना होगा कि डोमिनियन स्टेटस महज एक संभावना नहीं है, बल्कि विकास का एक चरण है, जिस तक पहुँचने में ग्रेट ब्रिटेन भारत की यथाशीघ्र मदद करने के लिए पूरी तरह से बाध्य है। यदि ऐसा है, तो राजाओं के लिए सही नीति यही है कि वे भविष्य के भारत का अभिन्न अंग बनने के लिए खुद को तैयार करें और साथ ही अपने विशेष अधिकारों और विशेषाधिकारों की रक्षा के लिए क़दम उठाएं। लेकिन प्रस्तावों से पता चलता है कि उनका स्पष्ट लक्ष्य खुद को पूरी तरह से अलग इकाई बनाना है, जिसमें एक-दूसरे या ब्रिटिश भारत के साथ कुछ भी समान न हो। प्रस्तावों की आधिकारिक व्याख्या से यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि वे ब्रिटिश भारत को संदेश देने के लिए हैं, लेकिन राजाओं की नीति में ऐसा कुछ भी नहीं है जो किसी भी तरह से ब्रिटिश भारत के अपने तरीक़े से विकास के प्रतिकूल हो। मुझे लगता है कि भारतीय राज्यों के विकास की कल्पना ब्रिटिश भारत के लिए अपनाई गई नीतियों के अलावा किसी अन्य तरीके से नहीं की जा सकती है, जिसका उद्देश्य दूर के भविष्य में भी बाद वाले को डोमिनियन का दर्जा देना है। यदि ऐसा नहीं है, तो ब्रिटिश भारत के डोमिनियन बनने पर भारतीय राज्यों का संविधान और सरकार का स्वरूप क्या होगा? क्या यह सभी बड़े और छोटे राज्यों में एक समान होगा या जितने राज्य हैं, उतने ही रूप लेगा? क्या राज्यों को सभी के सामान्य हितों में संयुक्त रूप से व्यवहार करना चाहिए या भारत के डोमिनियन के साथ अपने-अपने हितों में व्यक्तिगत रूप से व्यवहार करना चाहिए? राज्यों

के हितों के संबंधों का निर्धारण किससे किया जाना चाहिए? क्या उन्हें एक दूसरे के साथ-साथ डोमिनियन के रूप में भारत के साथ संधियाँ करनी चाहिए? यदि नहीं, तो प्रस्तावित संघ न्यायालय किस आधार पर एक ओर राज्यों के हितों के बीच और दूसरी ओर राज्यों और भारत के डोमिनियन के बीच उत्पन्न विवादों का निर्णय करेगा?

इन प्रश्नों का एकमात्र संभावित उत्तर यह है कि ब्रिटिश भारत और राज्यों के बीच कोई घनिष्ठ संघ नहीं है और राज्यों और ब्रिटिश भारत के बीच या राज्यों के बीच कोई सीधा व्यवहार नहीं होना चाहिए। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह है कि ब्रिटिश भारत को कभी भी डोमिनियन का दर्जा नहीं मिलेगा और ग्रेट ब्रिटेन हमेशा के लिए हमारा स्वामी बना रहेगा और दोनों की नियति उसके अपने हाथों में होगी।

'राजकुमार अपनी नीति रखने में गर्व महसूस कर सकते हैं और उसे लागू करने का प्रयास कर सकते हैं। तथ्य यह है कि यह ब्रिटिश सरकार की नीति है जिसे वे जानबूझकर या अनजाने में अपनी नीति के रूप में अपना रहे हैं। यह नीति राज्यों के लिए एक जांच समिति और ब्रिटिश भारत के लिए एक वैधानिक आयोग की नियुक्ति से स्पष्ट रूप से झलकती है, जो एक दूसरे से स्वतंत्र रूप से अपने संदर्भ की शर्तों पर अपनी जांच करेंगे। उस नीति का पहला फल यह है कि राजाओं को ब्रिटिश भारत से यह कहने के लिए प्रेरित किया गया है कि 'अपनी लाइन पर आगे बढ़ो। हमारा आपसे कोई लेना-देना नहीं है और हम अपने दम पर आगे बढ़ेंगे।'

'खुद को ब्रिटिश कैबिनेट की जगह पर रखते हुए, मैं इसे कुछ इस तरह से तर्क दूँगा :- आइए हम ब्रिटिश भारत को साइमन कमीशन के विवाद में व्यस्त रखें और इस बीच देखें कि एक स्थायी और अप्रभावी सरकार बने। ब्रिटिश भारत और राज्यों के बीच एक द्विपक्षीय अवरोध खड़ा कर दिया गया है, जिससे दोनों ही हमारी दया पर छोड़ दिए गए हैं। जिन राजाओं में कोई राजनीतिक अंतर्दृष्टि नहीं है और जो अपने स्वयं के विशेषाधिकारों से ईर्ष्या करते हैं, वे ब्रिटिश भारत की राजनीतिक गतिविधियों से भयभीत होंगे और ऐसे किसी भी प्रस्ताव का स्वागत करेंगे जो उन्हें ग्रेट ब्रिटेन की मज़बूत भुजा के संरक्षण में अपने राज्यों के आंतरिक मामलों में उनकी वर्तमान स्थिति, सम्मान और स्वतंत्रता को सुरक्षित करने के लिए प्रतीत होता है। यह विवादास्पद प्रश्न

कि क्या राज्य संवैधानिक रूप से ब्रिटिश क्राउन या भारत सरकार के साथ गठबंधन में हैं, बुलटर समिति के प्रस्तावों और सिफ़ारिशों को स्वीकार करेंगे जो उनके और ग्रेट ब्रिटेन के बीच भविष्य के संबंधों का एक नया आधार तैयार करेंगे। यह उम्मीद नहीं है कि साइमन कमीशन की सिफारिशें ब्रिटिश भारत को डोमिनियन का दर्जा देने के क़रीब पहुँच जाएंगी, लेकिन इसकी मांग इतनी आग्रहपूर्ण है कि इसे मारने के लिए एक प्रभावी हथियार तैयार रखना बुद्धिमानी है। यह हथियार राजाओं के तथाकथित संप्रभु अधिकार और राज्यों की जाँच समिति द्वारा लाई गई नई व्यवस्था के तहत ग्रेट ब्रिटेन के संधि दायित्व होंगे, जिससे सेना और कुछ अन्य महत्वपूर्ण विभागों का नियंत्रण अपने हाथ में रखना ग्रेट ब्रिटेन के लिए अनिवार्य हो जाएगा और इस तरह भारत के लिए डोमिनियन स्टेटस हासिल करना असंभव हो जाएगा।'

'उपर्युक्त तर्क में एकमात्र दोष यह है कि भावी भारत सरकार की किसी भी संभावित योजना के लिए चार आवश्यक पक्ष हैं। ब्रिटिश सरकार, ब्रिटिश भारत के लोग, भारतीय राज्यों के शासक और उन राज्यों के लोग, लेकिन लाखों की संख्या में इन आवश्यक पक्षों में से अंतिम को पूरी तरह से नज़रअंदाज़ कर दिया गया है। राजकुमारों ने अपने लोगों से जो वादा किया था वह था 'कानून का शासन' जो अंग्रेज़ी भाषा का एक बहुत ही ग़लत और, अगर मैं ऐसा कहूँ तो, वेश्यावृत्ति वाला शब्द है। आधुनिक दुनिया में कानून का कोई शासन नहीं हो सकता है जहाँ लोगों का शासन नहीं है जैसा कि वे वर्तमान में हैं, कानून का एकमात्र शासन राजकुमारों की इच्छा है। क्या यह कल्पना की जा सकती है कि इन राज्यों के लोग ब्रिटिश भारत के लोगों की तरह ही महत्वाकांक्षाओं और आकांक्षाओं से प्रेरित होकर किसी भी समय के लिए चुपचाप ऐसे शासन को स्वीकार कर लेंगे, या ब्रिटिश भारत में परिवार, जाति और धर्म के सबसे क़रीबी संबंध रखने वाले लोग अपने भाइयों को एक काल्पनिक रेखा के दूसरी तरफ छोटे तानाशाहों द्वारा शासित होने के लिए सहमत कर लेंगे जबकि वे स्वयं किसी तरह की जिम्मेदार सरकार का आनंद लेंगे?

मैंने जो नीति वर्णित की है वह कुछ समय के लिए उपयोगी लग सकती है लेकिन लंबे समय में यह सभी पक्षों को पहले की तुलना में बहुत ख़राब स्थिति में छोड़ देगी। वास्तव में यह केवल एक नए और अधिक गंभीर संघर्ष का

प्रारंभिक बिंदु है जो हमने अभी तक नहीं देखा है। अभी तक देखा गया है।

'एक राजनेता के रूप में ऐसा कोई कारण बताना असंदिग्ध प्रतीत होता है जो ऊपर उल्लिखित चार आवश्यक तत्वों को एक साथ मिलकर काम करने और एक साथ काम करने में सक्षम बनाता है। जहाँ तक राजाओं का सवाल है, यह न केवल सच्ची राजनेतागिरी है बल्कि उनके अपने लोगों और ब्रिटिश भारत के लोगों को अपने विश्वास में लेना और उनके माध्यम से उनके विशेष अधिकारों और विशेषाधिकारों को सुरक्षित करना उनके सर्वोत्तम हित में है जो अन्यथा कभी सुरक्षित नहीं होंगे, ख़ासकर तब जब लोग राजाओं के बावजूद अपने अधिकार में आ जाएँ।'

इस प्रकार पाठक देखेंगे कि यह योजना भारत के भूखे लाखों लोगों की स्वतंत्रता को कुचलने के अलावा और कुछ नहीं है। भारतीय शासकों को जो नाममात्र का अंतरराष्ट्रीय दर्जा देने का प्रयास किया जा रहा है, जो वास्तव में केवल सामंत थे, वह राजाओं को लुभाने के लिए एक जाल मात्र है। इसलिए इस संबंध में परिपक्व विचारों और गहन विचार-विमर्श के बाद ही कुछ किया जाना चाहिए। भारतीय राज्यों के लोग इतनी दयनीय स्थिति में होने के बावजूद भी एक स्पष्ट भाषा में अपना फैसला दे चुके हैं। संकल्प या उनकी एकमात्र प्रतिनिधि संस्था अखिल भारतीय राज्य जन सम्मेलन का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। मैसूर राज्य कांग्रेस, केरल राजनीतिक सम्मेलन, जंजीरा राज्य सम्मेलन, पांचवाँ कर्नाटक राजनीतिक सम्मेलन आदि जैसे अन्य ज़िम्मेदार और प्रतिनिधि निकायों ने भी इसी तरह के प्रस्ताव पारित किए हैं।

इन सभी प्रस्तावों से लोगों का फ़ैसला स्पष्ट रूप से प्रकट होगा। दूसरे दिन इंग्लैंड में एक राजकुमार ने कहा, 'हमें ब्रिटिश भारत की आकांक्षाओं के साथ पूरी सहानुभूति है, हम उनके ख़िलाफ़ नहीं हैं लेकिन हम विकास के पक्ष में हैं, क्रांति के नहीं।' कुछ अन्य राजकुमारों ने भी सर लेस्ली स्कॉट द्वारा तैयार की गई योजना से अपनी असहमति दिखाकर अपनी मांगों के खिलाफ़ बढ़ते आंदोलन पर पानी फेरने की कोशिश की है, लेकिन इससे किसी को धोखा नहीं होना चाहिए क्योंकि उनका कहना है कि वे इसके उद्देश्य और बुनियादी बातों से सहमत हैं, न कि इसके विवरण से। दूसरे शब्दों में, वे भारत को इतने सारे पानी के तंग डिब्बों में विभाजित करने और क्राउन के साथ सीधे संबंध स्थापित करने में सहमत हैं, ऐसी परिस्थितियों में उनकी असहमति का कोई

मूल्य नहीं है। इसलिए जहाँ तक हमारा सवाल है, हम चेतावनी देना चाहेंगे, केवल राजकुमारों को ही नहीं बल्कि ब्रिटिश सरकार को भी यह संदेश देना होगा और वह यह है :- 'हम विकास के पक्षधर हैं, लेकिन विकास की मात्र बातें ही हमें संतुष्ट नहीं करेंगी। अगर सरकार और प्रधानमंत्री अपनी मूर्खता पर अड़े रहेंगे और अपने लोगों के प्रति अपने दायित्वों को पूरा किए बिना और उन्हें नागरिकता के बुनियादी अधिकार और प्रशासन में उनका वाजिब हिस्सा दिए बिना, किसी भी रूप में वर्तमान योजना को स्वीकार करेंगे, तो वे चाहें या न चाहें, उन्हें एक के बाद एक क्रांतियों का सामना करना पड़ेगा और यह पूरी तरह संभव है कि तैमूर और आलमगीर की तरह उनकी यादें शांति की सुनहरी स्याही से नहीं बल्कि मानव रक्त की काली और खट्टी धाराओं से लिखी जाएँगी। भारतीय राज्यों के लोग, यदि वे मात्र मिट्टी के ढेले नहीं हैं, यदि वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के क्रूर मोलंच की वेदी पर बलि चढ़ाए जाने वाले मूक पशु नहीं हैं और यदि वे अपने स्वाभिमान, सम्मान और पुरुषार्थ के लिए अपमानजनक समझते हैं कि उन्हें न केवल अपनी स्वतंत्रता के लिए बल्कि भारत के उभरते राष्ट्रवाद और अंतर्राष्ट्रीय शांति और मैत्री के लिए भी मात्र भाड़े के गधे के रूप में समझा जाए तो वे इस देशद्रोही योजना को अपनी इच्छा के विरुद्ध क्रियान्वित और उन पर थोपे जाने की अपेक्षा स्वयं को सबसे बुरे से बुरे के लिए तैयार कर लेंगे।

* देखें भारत सरकार
लेस्ली स्कॉट की योजना पैरा 6 (ए) देखें।

-: समाप्त :-